

प्र पाठ्य ३

जैनदृष्टि

रचयिता

डॉ० इन्द्रचन्द्र शास्त्री

एम ए पी एच डी

प्रकाशक

मुनिश्री हजारीमल स्मृति प्रकाशन, व्यावर

पुस्तक

जनदृष्टि

प्राप्तिस्थान

मुनिश्री हजारोमल स्मृति प्रकाशित
-पाठर (राजस्थान)

सम्बन्ध प्रथम

प्रति ११००

मन् १९६८

भूय एक रुपया

मुद्रक

उद्योगशाला प्रस

किम्सव कम्प दिल्ली-६

प्रकाशक की ओर से

जैनदृष्टि

लेखक

डॉ० इन्द्रचन्द्र शास्त्री
एम० ए० पी एच० डी०

प्रकाशक

मुनि श्री हजारीमल स्मृति प्रकाशन
ग्यावर (राज०)

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

कालखण्ड

ऐतनपत्र के अनुसार वि. सं. 1900 और 1901 ई. में एक परिवर्तन आया है। इसका उद्देश्य भारत आरोग्य विभाग को प्राप्त करना है। विभाग परिवर्तित नाम का है। यह एक निम्न पुस्तक है। सभी विभाग को और भी सभी भाग की आरोग्य विभाग को एक ही उद्देश्य को प्राप्त करना है और एक साथ आरोग्य विभाग को प्राप्त करना है।

धर्म की स्थापना

उद्देश्य विभाग के प्रथम और द्वितीय तथा अन्तर्गत के प्रथम और द्वितीय नाम का प्रथम उद्देश्य है। दूसरे और उद्देश्य विभाग के प्रथम तथा द्वितीय तथा अन्तर्गत के प्रथम तथा द्वितीय द्वारा ममानक मन्त्र और मन्त्रों द्वारा है। स्वयंसेवक एक एक एक निर्वाह का काम के लिये उद्देश्य विभाग के लिए मन्त्रों की करना पड़ता है। एक युवा की भागभूमि का प्रथम भूमि कहा जाता है। धर्म की स्थापना लीला के लिये मन्त्रों द्वारा है।

१. जनतासेवकों में कहा गया है कि उन दिनों प्रत्येक स्वयंसेवक के एक काम और एक पुत्र उत्पन्न होता है। वे ही स्वयंसेवक प्रति-स्वयंसेवक बन जाते हैं। इस व्यवस्था को युवा धर्म कहा गया है।

वनमान युग अवगतिना का प्रथम आरा है । प्रथम तो तथा नृनाय का अधिकांश भाग भागभूमि था । उसके अंत में स्वयं प्राप्त मामणी पर निर्वाण कर्मिण न गया । इसी प्रकार एक युग ११ म वंश का अंत हो गया और दूसरे में अहं का ।

उसी समय प्रथम नीचकर भगवान् ऋषभदेव हुए । उन्होंने शास्त्रमंडल दूर करने के लिए कथिविद्या का आविष्कार किया साथ ही आग जलना बतलने पानना आदि बलाग सिखाइ । युगल व्यवस्था समाप्त न जानने के कारण विवाहगस्था की नाव टाली । समाज का विभिन्न वर्गों में विभाजन किया । राधमस्था की नीव डाली । अन्तिम अवस्था में घर छोड़कर सत्याग ले लिया और धर्म का उपदेश दिया । इस प्रकार के प्रथम वनातिक प्रथम गिना प्रथम समाजगाम्त्री प्रथम राजनानिन् तथा प्रथम धर्म प्रवर्तक थे । उनका नावन धर्मण और द्वात्यण परंपराओं का नाम अस्य का प्रकट करना है । मागवन के तनीव स्वयं में उनका । बणन चार अवस्थाओं में आया है और उद्ग परममागवना में गिना गया है । इस प्रकार ऋषभदेव हमारे नामन कर्मिण वर्णव और गत ज्ञाना परंपराओं के महापुरुष के रूप में जात हैं ।

जन कथागणित्य में उनके पृथ भरत प्रथम चक्रवर्ती माने गये हैं । वना ज्ञाना है कि उ ने एक गीगमहन वनयाया और राजनी वगधूया में श्रेष्ठ चक्र । श्वन श्वन हाथ में अगुनी गिर गई और अगुनी की प्रभा फीकीपक गई । धीरे धीरे उन्होंने अथ साधुपण्य भी उतारते प्रारंभ किए और प्रचेत अम फाका पन्ना गया । अंत में मुकुट भी उतार डाला और चहुरा फीका पड़ गया ।

भारत के एक नए भाग—एक नए गरीब जनसमुदाय पराधीन की ?
 ही नहीं वह सब कर रहा था । विरक्ति बड़ती गई और यहाँ
 कबल्य प्राप्त हो गया । यह घटना हम लक्ष्य की प्राप्ति करती
 है कि अनवरत अनामिका का मरना है । विरक्ति उमका
 माया भाव है और भाव म साध्य मरता ।

जब भगवान् अन्धकार ने साक्षर विद्या का सत्य और
 साक्षरि के अतिविता ममी पुनः सीमित हो गए । उपर सरण
 कर्मकी बना किन्तु साक्षरि ने उमकी अतीतता स्वाभाविक नही ।
 दाता में मुक्त हुआ । उमा समय साक्षरि के मन में आत्मसाक्षरि
 हुई और वह विरता हाकर का म बना गया । भगवान् के पाप
 मरता गया । पराधि उमका मन में अहंकार था । उनका पाप जान
 पर पूर्वसाक्षरि का भाव्यों को कर्मा करती पन्ना । मन म जा
 का अन्धकार घटा हो गया और एक सब सीध मया । मरीच पर
 देखे का मन विरता न साक्षरि बना लिए कि मु पाप न हुआ ।
 उमा समय साक्षरि और मारी नामक का बहिना ने पाप जाकर
 उमा समझाया और अहंकार छोड़ा न लिए कहा । भगवान् के
 पाप जाने के लिए हर उमा न साक्षरि का कर्मपाप ल
 गया । यह घटना हम लक्ष्य की प्राप्ति करती है कि साक्षरि के शेष
 म अहंकार बहुत बड़ी बाधा है । बहिना द्वारा भाई का अहंकार
 दूर किया जाना एक साक्षरि लक्ष्य की प्राप्ति करती है । जब
 पुनः अहंकार म अन्धकार विनाश की ओर चल पडता है
 नागे उमका पथ प्राप्ति करती है ।

अन्धकार के नए नाम मालह्वे लोचकर गतिनाथ उल्लेखनीय

है। व प्रथम अवस्था में चक्रवर्ती में और राज्य छोड़कर तीर्थकर बन। क्या जाना है पूर्वमंत्र में व एक बार मधुर्य नाम व राजा थे। उनकी अहिमा और दयालुता का दूर दूर तक प्रशंसा थी। दा देवता परीक्षा लेने व विष्णु आण। एक कवूनर बन गया और दूसरा उस पर पपन्न वाला बाज। डरा हुआ कवूनर राजा की गाँव में आकर बैठ गया। पीछे पाँडे बाज आया और कहने लगा—राजन् यह कवूनर मेरा भोजन है। मैं भूखा हूँ मैं छोड़ दूँगा और मुझे अपना भूख मिटाने दोगे।

राजा ने उत्तर दिया—मैं गरुणागत को नहीं छोड़ सकता। भूख मिटाने के लिए तम इमक बन्धन में मेरा मांस न ली। तराजू मगाई गई। एक आर कवूनर रखा गया दूसरा आर राजा अपने अंग काट कर चपान लगा किंतु कवूनर भागे भागा गया। अंत में राजा ने अपना सारा पशर तराजू पर चड़ा दिया।

यह देखकर बाज आर कवूनर स्तब्ध रह गए। दोनों अपने अमत्री रूप में प्रकट हुए और राजा की प्रशंसा करते हुए वापस चले गए।

गानिनाथ का जीवन भा प्रथम-यवस्था का विष्णु हुए है। कवूनर की घटना से पता चलता है कि जनघम अहिमा के साथ गरुणागत का रक्षा की भी मन्त्रव दता है। यथा घटना महाभारत में गिरि राजा के नाम से आई है। हमें सिद्ध लगता है कि गानिनाथ भा समस्त भारतीय मस्वति के महापुरण थे।

प्रथम स्वराज तीर्थकर प्रागैतिहासिक काल में हुए। उन्हें

- (१) वामुख
- (२) मन्वण (कृष्ण क य भाइ)
- (३) प्रद्युम्न (पुत्र)
- (४) अनिरुद्ध (पौत्र)

उत्तरकाल में आध्यात्मिक व्याख्या का गई। किन्तु यह स्पष्ट है कि इनका प्रारम्भ कृष्ण और उनके परिवार की पूजा में हुआ। इनका ही नहीं कृष्ण की गनिका को भी देवी गनिका का रूप में पूजा गया। यह गणा का आधार पर भक्ति का पूजा बना था किन्तु व्यक्ति के आधार पर गुणा की व्याख्या थी। कृष्ण का प्रथम चष्टा का गुण मान लिया गया। उनका उत्तम बटना स्थाना पाना विनासयोगे आदि सारा बानें धर्म का अंग बन गया। उनका श्रवण कीर्तन एवं अनुकरण साधना का मुख्य तत्त्व हो गया।

नेमिनाथ ने ध्यवित्पूजा के स्थान पर गुणपूजा का प्रतिपादन किया। भक्ति का स्थान गुणा के प्रति श्रद्धा न ल लिया। गाना परंपराओं में चकर हुई और परम्परों को पाने लगे। जनधर्म अपने महापुरुषों के साथ जो विगुण लगाता है वह भागवत परंपरा से मिलते हैं। जन आगमा का पर्यायचयन करने में यथा चलता है कि गण परंपरा का कृष्ण के साथ घनिष्ठ संबंध रहा होगा। अनकृद्गुणामुत्र में कृष्ण की गनिका का वणन है जो कठोर तपस्या द्वारा प्राप्त करना है। बह्निमात्रा नामक सूत्र घणिकुत्र में संबंध रखता है। तातायमकेयों में भी कृष्ण का जीवन घटनाएँ आई हैं। जन परंपरा बसठ गताका

अपना मित्र है और वही गुरु । दूसरी आरय मा बताया गया है कि भक्ति का अपना गुरु कुछ भगवान् के हाथों में सांप दना चाहिए । कमलाग और भक्तिमाग का यह सम वय वस्तुतः म्ना जाय तो उपयुक्त ता परंपराओं का समन्वय है । ज्ञानमाग के रूप में तामरी परंपरा का प्रारंभ उपनिषद् में हुआ है । इस प्रकार गातासाधना का प्राचीन परंपराओं की प्रतिनिधि बन गया । म । भारत में भा कम और भक्ति का नेत्र जनक सदान् मित्र हैं । उभयुक्त विधवा म्मारे सामने भगवान् मयिना ४ का इन के रूप में तान बाते आती है — (१) जहंगा (२) गणपूजा (३) पुण्याथ का मत्त्व ।

पाश्चनाथ के समय तापमा का वस्तु प्रभाव था । पचाग्नि तप दाना हाथ उठाकर घूमने रहना एक टाग पर खड़े रहना य त म उग लट्टना जाति गन्ध शिवाण साधना का मुख्य तत्त्व था । माधारण जनता म्सा करने वाली का योगी अथवा आध्यात्मिक म्हापुरुष मानकर पूजता था । पाश्चनाथ न इस पुरुष शिवाका के विरुद्ध जावाउ उगा और आभ्यतर तप का मत्त्व दिया ।

कहा जाता है जय व राजकुमार थ एक घोर घूमने के लिए नगर में बाहर गए । वहा कमठ नाम का तापम पचाग्नि तप कर रहा था । पाश्चनाथ न दसा कि एक लकड़ा में साप छिपा हुआ है और तापम म उसकी प्राणरमा के लिए कहा । उत्तने कड़ हाकर उत्तर दिया — राजकुमार धम के विषय में क्या जानने हा / तुम्हें इस विषय में न ही बाल्ना चाहिए । पाश्चनाथ

और मानवीय अग्रिवाग स वचित कर लिया । महावीरन स्वका मा विग्राह किया और अपन श्रमणमध म सभी का ममान अग्रिकार लिया ।

ऊपर तीन पराराया का निर्णय था—भागवन तापम और वन्कि । वन्कि क पून ना म हा मण—(१) यण यागाणि क्रियाकार म विन्वास गहन वान मामावक (२) आत्म मायाकार पर वण नन वाल वणानी । मणवार क समय ननक अनिभिन कुछ अय परपराया का भा उल्लव आता है । जिनकी पणभूमि म जनूष्टि का विकास था ।

सकप्रथम स्थानबोद्धा क अना मवाण का है । उमका कथन है कि आत्मानाम का नार् गारयन तत्व नही है । व, सबल अनु भूलिया की धारा है । प्रति गण पिउला अनुभूलिया समाप्त हावा जानी है और उनका स्थान नर् जनमनिया वना रहता है । एक त्ति वह धारा सूख जाना । मण का नाम निवाण है । मणवार न म परपरा क विरुद्ध गारयन आत्मनत्व का प्रस्तुत किया ।

निवाय परपरा ननवाण का था । इगरा उल्लव उपर किया जा चुका ह । उमका कथन था कि बाह्य जगन मय नही । वण स्वप्न क ममान अशान्विक है । मणवीर न इसक विरुद्ध वाह्य जगन का भा मय बनाया ।

तामरा परपरा नास्मिवाका था । उमका कथन था कि गारर और आ मा परस्पर मि ननही है । गरीरका नाग हाण पर नुर्मि

- (३) कमवाच अर्थात् निजी पुण्याय न विस्वाम ।
- (४) हृत्पथीन वाचा-श्रेण की अने ता विचारगुद्धि वा अधिक म त्व ।
- (५) आत्मविश्राम क पथ न मानवमात्र वा समान अधिकार ।
- (६) आत्मा के रूप म गावत तत्व ।
- (७) वाह्य जगत् की वास्तविक मत्ता ।
- (८) परमत्व का अस्तित्व ।
- (९) पुण्याय वा महत्त्व ।

जीवन दृष्टि

प्राणिमात्र म दा बलियाँ स्वाभाविक हैं । सनप्रथम वह अपना सुरक्षण चाहता है । इसके लिए दूसरा क साथ सर्वथ शोचना है और सामाजिक नियंत्रण स्वीकार करना है । इसम मुख्य भावना भय एव सुरक्षा की शक्ती है । ज्या ज्या इस चिन्ता निवृत्त होता है भय का स्थान अन्वार चलता है और सुरक्षा का वेस्तारभावना । सम प्रकार दूसरा छत्ति धनपन लगती है । महत्त्वा गन्थान् आयता हैं और वह फरना चाहता है । प्रथम बलि सामा जेहता के लिए प्ररित करती है और त्तीय बयत्तिक स्वातन्त्र्य त लिए ।

सुरक्षण की भावना मुख्य हाने पर हम अधिक से अधिक यत्तिया क साथ मरथ जानना चाहते हैं । जब वास्तविक सबथ तें मिलते ता धर्म, जाति, राष्ट्रीयता मिज्ञान आदि के नाम

पर स्वयं कल्पना की जाती है । इसी भावना का अर्थ समझ
 लेना है । जब वामना मन्त्र में शक्ति कायया स्वार्थपूर्ति
 की जाती तो मन्त्राचार से स्वयं उमर का विशेष करण समझ
 है । गोहनाइ तथा प्रचार द्वारा अनुसंधान का समझ करना है ।
 अमन अथ मन्त्र का दृष्टिमान के लिए वह भी पर विचार
 पर प्रतिष्ठित रूप से समझा है । यदि कोई वाक्य भाव भी जान
 सके है तो उस दार करने का साहस की जाता है ।
 प्रकार वह मन्त्राचार मन्त्र का अनुसंधान करने जाता है
 समझ जानने पर तबान मन्त्र का भावित्व प्रविष्ट पर म
 है और मन्त्र के मन्त्राचार का है ।

रत्ना ३ और त्रितीय में विस्तार की। स्वयं परम में उमकी
 नष्टि वस्तुध पर रहती है और परम पर अधिकार पर।
 स्वयं त्रितीय प्रथम तथा त्यागवृत्ति अभिमान है परम त्रितीय
 त्रितीय एवं अपरपरण।

अनुयायी भाग्यमाना प्रकार का मान है। कुछ कानि या नवान
 विचारधारा का स्वागत करते हैं और कुछ विराध। प्रथम में
 विनाम का भावना बन्वता होती ३ और त्रितीय में गरमण
 रा। यह नहा क्या जा सकता कि प्रथम वग समयपर होता
 है और द्वितीय मासमय। रत्ना ३ अन्तर ३ कि प्रथम वग
 वनमान में असमय होता है। यह अन्याय कही उचित और
 माधार होता ३ व। अनुचित और निराधार। ऐसा वग प्रत्येक
 न ३ बान का स्वागत करता है चाहे बा ३ उमका परिणाम
 कुछ न हो। त्रितीय वग में भी माना प्रकार के व्यक्ति होते हैं।
 कुछ पुराना बान का ज्ञानि राष्ट्र धर्म आदि विनी अहिंसा
 व नाम पर पकड़े रत्न ३ कुछ अचित समयकर। माना अधिका
 में जा पग समझ का लेकर चलता ३ उसा का विनाम हाता
 है अथवा या ता त्रितीय का धार चल पत्त है या त्रितीय
 में छो जाने हैं।

जा परपरा सामाजिकता का मन्स्व नेता हैं वे पुस्तक
 परपरा ज्ञानि के रूप में किसी मोच का पकड़ लगी ३ और व्यक्ति
 का तन्नुसार त्यागना चाहती हैं। वहा मूल्यांकन का आधार तस
 गति द्वारा तयारकी गई मयात्ताए जाती हैं। व्यक्ति स्वतंत्र
 प्रतिभा एवं पुरपाय को छाड़कर उन मर्यादा का जिनता

अपि पान्न करना है उतना ही पान्न माना जाता है । दूसरे पान्ने में यो क्या जाणगा कि जीवन क स्थान पर जडता की उपा मना होने लगती है ।

दूसरी ओर जो परपराए यमि की महत्व पना हैं उनके मामने ऐसा कोई लभ्य नहा रहना जिसे स्थाया मानकर आये प्र सवें । जिम लक्ष्य का पकडन है वोद्विज विवेचन उम छिन भिन कर डागता है । 'यथा यथा विचाय ते विगायन्ते तथा तथा' अर्थात जन जने विचार करन में सभी धारणाए विगीण हाती चली जाती ह । कस्वरूप कदा आम्हा नही रहती । प्रगति का कोई लभ्य नही रहता । कोई प्ररणा नही रहती । जीवन नीरम हो जाता है । प्रथम का उताहरण अन्वि परपरा है जहाँ मनुष्य का लक्ष्य को पारलोय आज्ञाभा म पान्न निया गया । द्वितीय का उताहरण बीना का लूयवात है जहाँ मूय की भावना का ही समाप्त कर निया गया । मध्यमाल म ममा का विराम धाम माग क रूप म हुआ । जीवन का मूयनीन समगरर पुद्यपाथ से उपा ममी मनावति का पत्र है जो भारत का राष्ट्रीय चरित्र बना हुआ है ।

ममात्र और उयक्ति म परस्पर मायेणता है और नियम्य नियामक भाव भी । मरण का चिन्ता म मुक्त हुए बिना ध्यक्विन विभाग नही कर सकता । दूसरी पार विराम क बिना ममात्र से मशीय पना शा लगती है और उमका आवनगविन ममाप्त हो जाती है । इस प्रकार अनियमित विभाग ममात्रयत्र को छिन

मिन्न कर हायना है । जब प्राणि पर ननिकता बहनाम
 सामानिकता प्राणि किमा बान का नियन्त्रण नहा रना तो वह
 उद्धन हा जाता है और यन् औद्धय शाम म नगी भाग क समान
 सममात्र का भम्म कर जालना है । प्राणि की जाण जब तक प्रत्या
 रर समान मर्याप्ति रना है तो उनमे प्रजाण मिन्ता है । अमर्या
 -ति होने पर वना विनाग का कारण बन जाता है । म प्रवार
 -अस्तित्व की बिना प्राणि पर नियन्त्रण रखनी है । दूमरी आर
 -प्राणि अस्तित्व का परिष्कार करता है । उनके बिना अस्तित्व
 म कबरा जमा नान लगता है । पाह जग्याए मुझे हा जाने है
 और वास्तविक नान निरूप जाता है ।

बीज का अकुरित हान क लिए कुन्ड ममय नक भूमि म
 रना पना है । उदा ना आवन जाता है वन् भूमि की फाडकर
 उपर उटना चग जाता है । यदि वावर ननिकता ता उसकी
 उपयोगिता समाप्त ना जाणगा । यदि भूमि मे सख ताड ना
 मूख जाएगा । समान भूमि है शीर यकिन यह बीज जो अकुरित
 नाकर वक्ष का रूप धारण करता है । फल-फूल तथा छाया के
 उपार देता है । भूमि म पना रनवाना वाज यह उपार
 नगी दे सकता । उसका समय ना फल सदा । घन्ती उसी
 बीज पर गव कर सकती है जा या र निकन कर वष का रूप
 रना है ।

धम

भारम की प्राण्यामिक परपराजा का स्थूल रूप म दो
 धमिषा म विभक्त किया जाता है—धमण और वाहण । यह

विभाजन उपयुक्त हो दृष्टिमा को प्रकट करना है। धर्मण पर परा व्यक्तिरूपमा है और ब्राह्मण परपरा समाजरूपी। धर्मण परपरा सामाजिक उत्तरदायित्व को बधन मानती है और धर्मण छोड़कर सयासी जाने पर बल नहीं है। ब्राह्मण परा गान्धेय को जीवन का मुख्य अंग मानता है। ब्रह्मचर्याधम उच्चतमानी है। धानप्रस्थ और सयाम विश्राम। धर्मण परपरा सयाम का सर्वोत्कृष्ट माना गया है। वही गृहस्थाधम दुका नी जाने वाली सुविधा है। जो सुमाफिर राह चलते गया उम बध की छाया म घडी भर विश्राम क लिए जाता है। यह विश्राम अपने धाम म अध्ययन होता। यदायक दूर बजने क लिए होता है। मी प्रकार धर्मण परपरा म गृहस्थाधम एक विश्राम है। ब्राह्मणपरपरा का ह म वही जाया का मुख्य भाग है। किंतु धर्मण परपरा उम म मानती है और भाग का लक्ष्य क रूप म उपस्थित करनी वस्तुतः गया जाय मा भाग का अर्थ तमा मृत्यु है। तिमत्र पना जीवण मरण न हा।

गाना दृष्टिमा म ज्ञान प्रदान हुआ और भागरूपमा पर पराया ने सातारिध मुखा को भी धर्म का अंतर पर मान लिया। स्वयं को कर्णना मी रूप म आई। दूसरी आर ब्राह्मण परपरा ने म और म गान नीता का अधिकारी भू क रूप में स्वाकार कर लिया।

धर्म जयवा राजनानि कोई क्षेप हा प्रत्यय नता स्वनत्र विचारो या नेकर चलता है। जय नक व बल नहीं पकड़ते।

उन्को ममन किया जाता है । बड़ परन्तो पर नये गच का अपना लिया जाता है और नता जगतार तायकर बुद्ध या पयवर घन जाता है । उन बद्र म रखकर नया यत्र तयार गना है । समय बातन पर बर मा पिछु जाता है और नय नेता एक नय यन का जाव यता महमूम हान लगी है । म प्रकार पक्ति और ममात्र परस्पर सापेक्ष शक्य बरतत रतत है । जन नरि गना को उचित प्रथम दना चात्री है ।

जनम न जा व्यक्ति मुरक्षा को चिना मे ऊपर उठ चुका है उसक लिए व्यक्तिवान का प्रस्तुत किया और दूमेरे क लिए समानता का । उनका कथन है कि हिमक अगवा कूर स्वभाव वान पक्ति का व्यक्तिस्वानश्य के स्थान पर मामाजिवना का बार बरना चाहिए । अहिमक अथवा चरित्रसपन पक्ति का सामानिक यवन छाकर व्यक्तिस्वानश्य की आर । प्रथम क लिए सामाजिकता विकार है । द्वितीय क लिए वरतन । त्री म भूमिकाआ का जमन थावकयम और मुनिधम के रूप म उपस्थित किया गया है ।

धम मानताआ का परिष्कार करता है । जनवम का कथन है कि श्राध मान माया गम राग द्वेष आदि मनाधिकार मारा भावनाआ का दूषित कर लेते हैं । परस्वल्प जीवन म वपम्य आ जाता है और वपम्य ही पाप है । जनसाधना सामा पित मे प्रारम होता है । उनका जय है वपम्य का दूर करके समता गान का अभ्यास । यह मुनि का जीवनघन होना है और गृहस्थ यथापदिन कुछ समय क लिए अपनाता है ।

जो व्यक्ति विरोध करता है, हम उसे अपना शत्रु मानते हैं। धर्म का कथन है कि द्वेषभावना पतन का कारण है अतः उसे शत्रु न मानें। दूसरे का शत्रु समझने का जो कारण होता है, वही असली कारण विचारों का संघर्ष होता है और कभी स्वार्थ का। जब दूसरा व्यक्ति बिना दृष्टिकोण उपस्थित करता है तो विचारों का संघर्ष प्रारंभ हो जाता है। इस दूर करने का जिन अनेकानेक दृष्टि का तवाजा है, जिन्हें हम अपने विचारों का जितना महत्त्व देते हैं उतना ही दूसरा क विचारों को भी देना चाहिए। सन्तानुभूतिपूर्वक विचार करने पर दूसरे का दृष्टिकोण समझ आजाएगा। सत्य का माग में सत्य बड़ी चाँचो विचारों का अकारण है। धर्म उसी का जितना कहना है और दूसरे का स्वार्थों का संघर्ष की भाँति महा वात है। प्रत्येक व्यक्ति अपने स्वार्थ का महत्त्व देता है। यदि वह दूसरे का स्वार्थ का भाँति उतना महत्त्व देना चाहे तो संघर्ष न रहे। इन दोनों को समझ विचारों में समझ और समझ में समझ बना जाएगा।

हमारे उभयपक्षीय विचारों के लिए सबसे बड़ी पर धर्म जितना गया है। शत्रुता की भावना जान पर जो धर्म अस्मिन् ज पड़ती है वही मित्रता की भावना जान पर प्रिय बन जाती है। माना स्वयं भूतों रक्षण मानान की भूत मित्रता चाहता है। पुत्र को मित्राकर जिन जानना अनुभव करती है स्वयं स्वार्थ में नष्ट आता। क्या माता जितना दूसरी स्त्री की मना का संघर्ष कर रक्षित में जन्म जगती है। साधारणतया अपना मना सुख का कारण होती है और दूसरे का सन्तान दुःख का कारण

गुणा । यदि किसी कारण उमक साध भी कौटुम्बिक सत्रघ जड
 जाता है तो वह भी सुख का कारण बन जाता है । जो लम्बी
 चरनाई और धुरी जान पड़ता है मगाई हान पर उगीका प्रत्यक
 अभ्यवहार मधुर लगने लगता है । इस दृष्टिगत का जनपरिभाषा
 लन माह कहा गया है । वर "यों" या कम होना है चरित्र की
 जो उक्त भूमिकाए प्राप्त होना जाता है ।

१८१ जनधर्म म साधका की चार श्रणिया हैं । मय्यक दृष्टि
 १। आवश्यक साधु और कवनी । जो व्यक्ति एक वष म अधिक मना
 २। मालि पर रहता है वर मिथ्याश्रुति है और साधन की श्रणा
 ३। म न । आता । जो व्यक्ति चार मास से अधिक समय तक मना
 ४। मान्य रहता है वह आवश्यक नहीं हो सकता । जो पण्डितिन म
 ५। अधिक रहता है वह साधु न हो सकता । कवना में वह
 ६। मवशा समाप्त हो जाता है ।

१८२ पशुपण जनधर्म का सबसे बड़ा पव है । वष म एक बार
 १। आने व कारण म मवत्तरा मा म्म जाता है । उस दिन
 २। प्रत्येक जन म आशा का जानी है कि मन का मरु छो डान और
 ३। सबक साध मिश्रता का मवत जाडल ।

१८३ यहाँ आत्मगुद्धि क अनुष्ठान का प्रतिक्रमण कहा जाता है ।
 १। यह इसका अर्थ है मुत्तर दखना अथवा आम्भानरीक्षण । मुनि के
 २। मय लिय इसका प्रतिनिदिन म बार करनेका विधान है । राजिमन्नेन वान
 ३। मदापा क तिम सूर्योत्थ म पण्डितिक्रमण विद्या जाता है और
 ४। तिम म मदन वान दापा क तिम सूर्यास्त हान पर । पण्डितिन

बाद किन्तु जान बाह्य प्रतिबिम्ब का परिणत और चार महीनों बाद विश्व जान बाह्य की चातुर्मासिक कहा जाता है। सत्यसारी के दिन वार्षिक प्रतिबिम्ब किया जाता है। प्रत्यक्ष प्रतिबिम्ब के अंत में नीचे लिखे गए मिश्रता की घोषणा की जाती है—

लाममि सव्य जीवा सव्ये जीवा लमतु मे ।

मित्ती म सव्य भूगमु धर मज्ज ण कण्ड ॥

म सब जीवा का क्षमा प्रदान करता हूँ सब पाद मुझे क्षमा प्रदान करें। मरी सब प्राणियों से मिश्रता है जिससे वे धर नहीं हैं।

साधना की दृष्टि से जन्मम विषय का विभाजन भी तत्त्वात्मक करना है। काम से प्रथम दो ज्यों जीव और अजीव विश्व के घटक हैं। नेप सात जात की विभिन्न अवस्थाओं का प्रकट करते हैं। वे इस प्रकार हैं—

(३) पुण्य—गुण बाध

(४) पाप—दुराचर

(५) आसय—आत्मा का कर्तृत्व करने वाला प्रवृत्तियों के पाच है

१ मिथ्यात्व दृष्टि का विपरीत ज्ञान ।

२ अविरोधि अनुगामात्मीयता ।

३ प्रमाण असाधना ।

४ कर्माय बाध मान, माया और ताभ ।

५ योग भाव बचन बाध या प्रवृत्तियों ।

- (६) वज्र—आयुष्य के कारण होनेवाली आत्मा की मर्त्यता ।
- (७) सवर्—आयुष्य की रक्षा ।
- (८) निवृत्ता—नपम्या द्वारा सचिन मल को दूर करना ।
- (९) मातृ—जाया की गुड़ अवस्था ।

दशन

दाननिष्ठ विचारधाराओं का पर्यागोचन करने पर आत्मसाधन का दृष्टिगत आता है । प्रथम दृष्टि वस्तुओं में अन्तर्गत का दान करता है । विभिन्न परिणतना जीव भंगों के हान पर ही उसका ध्यान एते सत्त्व पर जाता है जो मन्त्र अनुष्ठान से ही दृष्टि का सामान्यता की अन्तर्गत अवस्था में ही दृष्टि का दान करता है ।

उत्पाहरण के रूप में यह व्यक्ति उद्योग में जाते हैं। उनके पास एक पूरा और शीटों का दस्ता है। फूलों का ग्रहण करने वाला है और बाग में बतलाता है। दूसरा उन बाग को आदरता है जो फूल और बागदानों के रूप में अभिषेक हुआ प्रथम अपना भावनाओं के अनुसार एक को पगल और दूसरे का नापसंद करता है। द्वितीय उस महामत्ता का दर्शन करता है जो अतकूल एवं प्रतिबुद्ध समान रूप में प्रकट होती है। प्रथम ने एक निम्न कली का दस्ता दूसरे दिन फूल का और तीसरे दिन मुरभाई हुई पशुडिया का। वह इस परिवर्तन को स्वाभाविक मानकर इस निष्पत्ति पर पहुंचता कि दुनिया में कार्य बस्तु स्थायी नहीं है। परिवर्तन अस्तित्व का अनिश्चय तत्व है। दूसरा व्यक्ति भूमि का दस्ता है जहां में अनेक प्रकार के वन्य गुम एवं पताएँ उत्पन्न होती हैं। उद्योग हानि में पतल राबकी मिट्टी एक समान होता है। विनाश के पश्चात् सभी गल्लर एक हो जाते हैं। वही वास्तविक सत्ता है। बीच की अवस्था क्षणिक विभ्रम है।

इन दो दृष्टियों के मध्य में जागिर भ्रमणों का पक्ष जनक दृष्टियों विकसित हुए। राजनीतिक परिवर्तनों में यह क्रम समाजवादी तथा व्यक्तिवादी दृष्टियों का जायगा।

जनमानस द्वारा दृष्टियों को द्वैत व्यक्ति और पर्यायविक तथा के रूप में पस्तुन करता है। नये गल्ल गल्लन की नीति मान्य बना है। इसका अर्थ है प्राप्त कराना। व निष्पत्ति या दृष्टियों का हम लक्ष्य पर पहुंचता है। यह सही जाती है। यह लक्ष्य

संरक्षण प्रधान अथवा सामाजिक होता है तो उस द्रव्याधिक्य बन जाता है और जब व्यक्तिगत अथवा विकासप्रधान तो उस पर्याप्तिक्य । आत्मा का समन्वय ही अनेकान है ।

भेदाभेद का पर्यालोचन चार अवस्थाओं को स्पष्ट किया जाता है—द्रव्य क्षेत्र कान और भाव । द्रव्य का अर्थ है मूल वस्तु । भाव का अर्थ है गुण अथवा अवस्था । क्षेत्र और कान क्रमशः स्थानकृत और समयकृत भेदाभेद का प्रकट करते हैं ।

अभेदाभेदा परंपराभास प्रथम स्थान अद्वैत वर्णन का है । यह विवेक मूल में एक ही सत्ता का प्रतिपादन करता है जो समस्त भेदास परे है । उपनिषद् में उसका वर्णन एकमेवा द्वितीयम रूप में आया है । गहराभाव का अर्थ है कि तीन पर तीन भेदा का निराकरण करते हैं । एक पर मज्ञानीय भेद का निराकरण करता है अर्थात् ब्रह्म एक ही है । एवं पर विज्ञातीय भेद का निराकरण करता है अर्थात् ब्रह्म के अतिरिक्त कोई अस्तित्विक मत्ता न । अन्तर्तीय पर स्थगित भेद का निराकरण करता है अर्थात् ब्रह्म अपरहित है । अज्ञान की दृष्टि में प्रतीयमान भेद मिथ्या है ।

उत्पत्ति चार दृष्टियों का लिये जायता कहना होगा कि ब्रह्म के अतिरिक्त अर्थ का अस्तित्व वा सत्ता नहीं है । यह द्रव्यकृत अभेद हुआ । ब्रह्म सर्वव्यापी है । ऐसा कोई स्थान नहीं जहाँ वह न हो । यह क्षेत्रकृत अभेद हुआ । वह गहरावत है । यह कानकृत अभेद हुआ । उसमें कोई परिवर्तन नही होता, साथ ही यह त्रिगुण है यह भावकृत अभेद हुआ ।

यज्ञान के अनुसार प्रत्येक प्रतीति में पाँच अंग रहने हैं—
 रक्षा, ज्ञान, मृत्यु नाम और रूप । इनमें प्रथम ज्ञान वास्तविक
 है और अतिम दो अव्यक्तविक । प्रथम तीन समस्त वस्तुओं में
 सामान हैं । वे ब्रह्मरूप हैं । अतिम दो भेद पर आधारित हैं और
 भावा रूप हैं ।

इसमें पञ्चानु साहस्रदशम जाता है । उसने विश्व में मूल
 में दो तत्त्वा का प्रतिपादन किया—प्रकृति और पुण्य । पुण्य
 अकार है । इस प्रकार दो प्रकृत भेद मान लिया । मितु प्रत्येक
 पुण्य नित्य मय भावा विगुण तथा परिवर्तनरहित है, इस
 प्रकार अथ तीन भेद का निराकरण कर लिया । प्रकृति एक
 ही है । उसमें प्रथम भेद नहीं है । मय भावा और गायत है ।
 अतः मय जोर कालकृत भेद मानने से, मितु तगुण और परि
 वर्तनशील है । अतः यही भावकृत अभेद माना है । पुण्य में केवल
 द्रव्यकृत भेद है और प्रकृति में केवल भावकृत ।

यद्यपि विश्व का रिक्त पण मात्र पञ्चार्थों के रूप में रहता
 है—द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य विगण समभाव और अभाव ।
 इनमें प्रथम ज्ञान का वास्तविक गता है । पाँच पार उ १ की
 रूप भावा काल है । गुण और रण द्रव्य में रहने हैं । द्रव्य नी
 चे—प्रथम पाँच अर्थ भावा जायाग काँ लिंगा, आत्मा
 और मन । प्रथम पाँच द्रव्य लो प्रकार के जान हैं परमाणु रूप
 और अकारशील । परमाणु विषय होता है और अवयवा अनित्य ।
 आयाग काँ लिंग जाय अत्मा भावा लय रित्य है । प्रथम
 तीनों लय से और भावा अन्वय । मन पणपरिमाणु रित्य और

अंक है ।

अप्युक्त चार दृष्टियां म विचार करने पर मान लिये
निम्न निरूपित है । इयं दृष्टि म आयु दान भवति है ।
ज्या तक अवानर म का प्रश्न है आकाश काल जोर लिंग म
एकत्व का प्रतिपादन करता है । तप म अनकरव का । क्षेत्र का
दृष्टि म आकाश काल लिंग जोर आत्मा म अभक्त का प्रति
पादन करता है । तप म भक्त का । काल की दृष्टि म अन्तिम पंच
तथा प्रथम चार दृष्टियों क परमाणु को लेकर अभक्त का प्रतिपादन
करता है । प्रथम चार तप का अवयव का लेकर भक्त का ।
गुणहृत तथा अवस्थाहृत भक्त समा तप म मानता है ।

साधारण अभक्त तथा भक्त की व्याख्या के लिए सामान्य एव
विशेष नामक पदार्थों का प्रतिपादन करता है । सामान्य का हा
दूधरा नाम जानि है । मनोवत्त्व जानि गमस्त मनव्या म एकत्व
का दान कराना है । भक्त का प्रतिपादन अवयवों तथा विशेष को
लेकर किया जाना है । एक घट, दूधरे घट से भिन्न है क्योंकि
दाना क कपाला जानि है । दा कपाला म परस्पर भक्त कपाला क
अवयवों क कारण है । तप प्रकार परमाणु पर पहुच जाते हैं ।
जब पूछा जाना है एक परमाणु दूधरे परमाणु म क्या भिन्न है ?
तो जम्हा उत्तर है विशेष । तप प्रकार आत्मा जाना आदि
आ तप नित्य है उनम भा परस्पर भक्त का कारण विशेष है ।
साधारण अवस्था अवस्था गुणा क जागर पर भक्त का प्रतिपादन
नहीं करता । अथ एव काल का भी जम्हा जागरण । मानना ।
तप लिए काल व्यक्ति अवयव दृष्ट्य का महत्त्व मना है । अभक्त

क शिवा भा मनास्यत्वात्वात् आदि जातिवा का प्रतिपादन करना है कि न उनका निष्पन्न जाति गूण आदि आधार का लहर किया जाता है ।

बौद्धमत भन्वाणे = । उमरा वधन है कि मनुष्य या पशु क रूप म दिमाई दने बाग पनाथ वाई एक न्वाई नहीं है । यह वदून म अणुना का पुज है । प्रत्येक अणु दूसरे अणु स विरक्षण और क्षणिक है । इस प्रकार द्र य मत्र काल मया भाव चारा हृष्टिवा से मकत्व का निराकरण कर दिया ।

मसा विरावरण की तरनमना का लहर चार परंपराए प्रकट हुई । मधुप्रथम मर्वागितरा है । उमने प्रत्येक पनाथ का क्षणिक त्व परस्पर मि न मानने पर भी गुण और गुणा जयवा धम और धर्मो मोनो वा अस्मितर स्याचार किया । मी परंपरा का दूसरा नाम बभापिर है । दूसरी परंपरा न धर्मो अक्वा द्र य का अवलाप कर दिया । उमने कहा म रूप रम आदि गुण अथवा धर्मो का प्रताति मोनी है । उनक तीर विगी गुणा अथवा धर्मो का मता विगी कयता है । इस सिद्धांत से धमभावना कय जाता है । मरा प्रतिपादन मोवाविरा र किया । न सारा परंपरा योना मर की है । उमने कहा— हम पशुना आदि पनाथो की अनुभूति जाना है । मर शिवा बाग पनाथ का अस्मितर आनपक गई है । ररने म वाई मनु गीगता कि म भा ग म वाह सिद्धात है । म परंपरा का माना न अथवा विवा न मानना कहा जाता है । मधु धम का भा पलाप कर दिया । मो से परंपरा म यगा का है । उमने कहा कि यामाविकता का

गा अतल आदि विद्या परिभवा म नया रगा जा मवता । मने
 अथ क समान पान वा भा वाग्निविक मानने म मरार कर
 निया । म परपरा ता माग्निविक कय जाता है ।

वस्तुतः दया जायता म्पुत्रा भग्निविक वा नी पयवमान
 है । मवप्रथम व्यक्तित्व म पम्पर भग्नि विद्या जाता है । अब
 व्यक्तित्व का विवर्णन करत है ता प्रत्येक अग पर दूमर म पृथक्
 हा जाता है । अगा क भी अग जात है । अब प्रत्येक अग का
 मृष्टि करत चव जात है तो कही अत नी मगा । अत मृष्टि
 अमलाय पर रहती है मर किसी वस्तु का विद्यात मन्त मर ।
 अत वस्तुतः पम्पर का म्पुत्र म विगण कदा पर पम्पा । अत म
 कया गया कि उमका प्रतिपादन विधि रूप म नही हो मवता ।
 ववादि विधि का अर्थ है किमा मग का रवाजार करमा । उमका
 प्रतिपादन पम्प नेति (यन् नही है) म्पुत्र द्वारा हा मवता है ।
 कौट परम्परा उमा मध्य पर एक व का निराकरण करता हुई
 पम्पुची । म्पुत्र एक वस्तु का द्वारा वस्तु म भग्नि करता है । वस्तुतः
 ने कहा कि परममन्त्र व्यवस्था है । भग्नि म पर है अब म्पुत्रात
 है । दूमरी म्पुत्र म्पुत्र का वस्तु म किसी मामा प मन्त्र का लेकर
 चवता है । कौटान म्पुत्र यन् सामा य अथवा एकना निरा
 कल्पता है । अत वस्तु का म्पुत्रों द्वारा प्रतिपादन नही हा
 मवता ।

अथ क समान म्पुत्र क क्षेत्र म म्पुत्र अतम मवतावाणी
 है । उमका कथन है कि म्पुत्र और अमन्त्र ओवत्त्व और मवत्त्व
 वाग्निविकता और निरपता मभी वाग्नि अमन्त्राभन्त मे म्पुत्र है ।

द्वयत्त प्राज्ञान् मान क नात ज प द्वायणा न जुषा हुआ है।
 द्वयत्त न तत्र राधक्य तत्र अकम्पाभद जाने पर भा व्यक्तित्व
 ही दृष्टि में तत्र ३ । दूसरी ओर अ य श्रावणा से प्रथम भी है।
 सभी प्रकार बाल्य द्वयत्त मुख्य स्वत्त न भिन्न है ।

भक्त्यो की इन सापेक्षता का निरूपण मान तथा क रूप में
 किया जाता है । तत्र ही व्यक्ति किसी स्त्री का पुत्र है जो
 किसी का पिता । किसी का भाई जो किसी का पति । प्रत्येक
 स्त्री अपना अपनी दृष्टि का लक्ष्य व्यरहार करती है । साधारण
 व्यवहार के लिए अपनाई जान वाली इन दृष्टियों को ही न
 कहते हैं ।

कुछ दृष्टियों का न केवल चरता है और कुछ अथ का ।
 यथा वस्तु को देखते उमके गाव नाम जोड़ा जाता है और
 वही नाम म अथ का साथ किया जाता है । उदाहरण के रूप में
 हम विशेष प्रकार का बाल्य देखकर कहते हैं — तमिा आ गया ।
 यही अथ के आधार पर नाम गाया गया । दूसरी ओर हम
 स्वत्त का प्रकारते हैं । यहाँ नाम के द्वारा अथ का बोध होता
 है । इसी दृष्टिमा का प्रथम अथनम और तन्तय रना जाता
 है ।

अथ नय तीन ३ । उनमें प्रथम नय सामासिकत्वही है । वह
 मकत्व को जोर जाता है । यत्र तदनम मनेकत्व का गार ।
 तीसरा नयमनय है । यह साम्प्रतिकता से जाय बढ़कर जीवचा
 रिक्त आधार का भा व्यक्त कर लेता है । उदाहरण के रूप में

नम किमा विज्ञान का मवन कहन लगन हँ । मन्वडि का धर ।
इन उपचारों का आधार नहीं जन्मा होता है क्या बनना का
भासना कभी गण, कों रुदि ।

दान्तय धार हँ । अजभूत साधारण व्यवहार का उकर
चलना है कडोरना नो बरलना । जन्म रण क रूप में अघ्यापक
का अघ है प निे वाला । किम तिस समय वह भोजन कर रहा
है अजभूत की दृष्टि में उस समय भी अघ्यापक है । यही वह
व्यवसाय का जन्म है सात्त्विक क्रिया का मनी । दान्तय पर्याय
जन्म म दिङ्ग बवन आदि क आधार पर भए मानगा है । उसकी
दृष्टि म नर और पुन्य एन का अघ क बाधक है किन्तु दार और
भार्या जन्म । मयभिरुन्तय पुन्यति का उकर दोनों म
म कर डालना है । एवभूतनय नात्त्विक अवस्था को लकर
चलना है । यह उसी का अघ्यापक क या जा पना रहा है ।
वही व्यक्ति जब मा जन्म है या भाजन कर रहा है तो एवभूत
नय का दृष्टि म अघ्यापक मनी है ।

प्रस्तन मान नय कवल उपलक्षण है । यस्तुत जेवा जाय तो
प्रत्यक वस्तु का निरूपण बरत समय जिनका दृष्टिया सामने
आता हँ उनने का नय हँ ।

अपे शवात् का हा दूसरा नाम अनजान है । इसका पहला
अघ है—एकान का अभाव । जनान्न मानना है कि सत्य पर
एवचन क जिन एवात्त छानना हुमा । दूसरा अघ है अत अर्थात्
निगया की अनकना । प्रत्यक वस्तु अनन धर्मत्मक है । सन्नुधार
दृष्टिया मा अनेक हा जानी है । उत्तरयो काल म उनका निरू-
पण सप्तभगी क रूप म किया गया । वह इस प्रकार है—

- (१) स्यान्मि- प्रत्येक वस्तु निर्गमि अथ वा स है ।
 (२) स्या नास्ति - दूध का अणु वा स नहीं है ।
 (३) स्यान्मिनास्ति - जब पानी अपत्याआ की साथ
 रखा जाय ता स भी और नया भा ।
 (४) स्यात् अवशतय - यदि दाना अवशाए एक साथ रहे
 जाय ता कुछ भी कहना कठिन है ।

आमम ग्राह्य म पस्तन तार मग ही मिश्रत हैं । उन
 तार म अपस्त यता को नकर तात और उड़ा मिश्रण ।

- (५) स्यान्मि अवशतय
 (६) स्या नास्ति अवशतय
 (७) स्यान्मिनास्ति अवशतय

अस्तिनास्ति क समान भद और जमद नित्यता और जनि
 ह्यता आदि धाता का नकर भा उपयुक्त भग किण जाय है ।

तत्त्वाथ सूत्र म कहा है 'तत्त्वाध्ययधौययुक्त्वन मन' (तत्त्वा
 थसूत्र अ० १। सू० २६) अथान प्रत्येक वस्तु म नया पर्याय उत्प न
 हाता स और तामान पर्याय तत्त्वा से जाना है । साथ ही एक
 तेना द्रव भी है जो पारा म अनुसूक्त रहता है । इस प्रकार
 प्रत्येक वस्तु द्रव्य का अणुना नित्य है और पर्याय की अपक्षा
 अतित्य ।

द्रव्य छ ३ । जोर पुनः एम अथम आवाग और वाग ।
 जोर का स्वभाव चलना है । पुनः म रूप रस रस रस और स्या

रहते हैं। अथर्वजी में इन दोनों को अमन माइड (mind) और मन्त्र (matter) कहा जायगा। धम और अधम अमन गति और स्थिति में सहायक है। आकाश का अर्थ है धूम और काल समस्त पञ्चतन्त्र का कारण है।

जैन धम और लोकात्म्य

राजतानि में एक सीमा पर साम्राज्यवाद है। दूसरी सीमा पर अराजकतावादा। पुरातन मानव छोटे छोटे कुलो में रहता था और उनमें परस्पर युद्ध चले रहते थे। सारा अधिकार नेता अथवा कुलपति के पास होता था। वही धमगुरु था वही राजा और वही पिता। उसकी आज्ञा ही कानून थी। धीरे धीरे सत्ता विकेंद्रित होती गई और सविधान अर्थात् कानून बनाने का काम ऋषिमुनिशाक हाथ में आ गया। राजा दंड नायक रह गया। जब दंड उग्र हुआ तो प्रजा ने विद्रोह कर लिया। राजा का मार डाला और अराजकता छा गई। लोकात्म्य एक ओर एकाधिपत्य का रोकता है दूसरी ओर अराजकता को। इसके बीच मुख्य तत्त्व हैं—

- (१) मनुष्य की मवशेषता
- (२) स्वतंत्रता
- (३) समता
- (४) त्याग
- (५) मित्रता

मनुष्य की सवशेषता

प्राचीन समय में देवता शास्त्र परम्परा त्रियाकाड आदि के रूप में प्रत्येक क्षेत्र पर अनावश्यक तत्त्व छाए हुए थे और मनुष्य उनके नीचे दबा जा रहा था । धर्म ने क्षत्र में ईश्वर तथा देवताओं के नाम पर अतीन्द्रिय शक्तियों की कल्पना की गई और बुद्धिगम्य न होने पर भी मानने का विवश किया गया । पुस्तक-विशेष को महत्त्व देकर विचारगति का कुण्ठित करने का प्रयत्न किया । मानव से कहा गया अपनी बुद्धि से न साचकर पुस्तक का जाशाआ का अक्षरण प्रमाण मानें । इतना ही नहीं उस पुस्तक की व्याख्या का अधिभार भी बगवित्प ने अपने हाथ में ले लिया । नीरस कमवाड का जाल रचकर हून्य की कगोर बना लिया गया । हिंसा धर्म का अंग बन गई और उसके विरुद्ध मन में उठने वाली करुण प्रतिक्रिया का नास्तिकता कहा गया । सत्य, अहिंसा आदि नतिक नियमों की उपयोगिता हानि लगी । धर्म पारौरीक त्रियाआ तक सीमित हो गया । उसका हृदय के साथ सम्बन्ध टूट गया ।

सामाजिक क्षत्र में वर्णभेद त्रियभेद आदि के रूप में मनुष्य और मनुष्य के बीच विषमता की दीवार पड़ी है गई । पत्न होते ही एक वाल्य पूय और दूसरा घुणास्प मान लिया गया । गुण में रान पर भी एक का सत्कार होने लगा और दूसरे का गुण हा पर भा निरस्कार । उमे विकास के समस्त अधिभारों ने बचिन कर लिया गया । इतना ही नहीं उसके लिए इस प्रकार की

वेष्टा या आकाशा का भी भयकर छन्दस्य हमना दण्ड । ईश्वर
 के भा आध्यात्मिक अधिकार हीन गिना दण्ड ।

थी। दूसरी आर धमजीवी यम था। जिन रात परिश्रम कर पर भी उसका कोई अधिकार न था। मजदूर की सत्ता व भी विवश हाकर मजदूर बनना पड़ता था।

साकत व मानवता का दमन करने वाला इन तत्वाः समाप्त कर देना चाहता है। धम व क्षम म उसका कथन कि प्रत्येक मनुष्य अपने आप म परमात्मा है। वह स्वयं अप उद्धारक है और स्वयं अपना पातक। वह अपने ही पुरुषा द्वारा ऊपर उठ सकता है। इसकी कोई शक्ति न उस कि सकता है और न उठा सकती है। देवताओ के सामन हाथ ज कर गिड़गिड़ान वाले मनुष्य का उमन कहा -- अपने पुरुषा द्वारा आत्मगर्व का विकास करा। फिर देवता तुम्हारे च चूमेंगे। कल याकतव्य का विवक करने के क्रिया उसने कहा- अपनी अतरात्मा स पूछा। जा बात तुम्ह वुरी लगती है। दूसरे को भी वुरी लगेगी। उसका आचरण विपमना है और पाप है। इसके विपरीत जितना समता की आर बढ़ागे उत ही धम है। इसने लिए किमी दूसरे पर अधविश्वास करन आवश्यकता नहीं। समता के सिद्धांत को नेकर बढ़ते चले जाअं अहिंसा सत्य आदि नतिक नियम उमाका विस्तार है। समता जहां पून होती है उसका नाम मोक्ष है।

महान् दार्शनिक ब्रह्मे का कथन है कि मनुष्य उद्देश्य है अ समस्त व्यवस्थाएँ तथा विद्याएँ विधेय। सो विधेया का मह भी एक उद्देश्य जितना नहीं होना। समस्त व्यवस्थाएँ मनु

वर्णिक परम्परा में वक्त वाक्यमय का आधार ब्रह्म की मान्यता मानी गई है। वर्णव्यवस्था परम्परा में इसका आधार व्यक्तिव्यवस्था की प्रामाण्यता है। दोनों परम्पराएँ वर्णव्यवस्था का समर्थन करती हैं। जैनधर्म ने इनके स्थान पर समता का रखा। भगवान् महावीर ने कहा—जब तुम किसी को मारने या मराने जान हो, उससे जगह अलग हो खड़ा देखा। यदि वह व्यवहार तुम्हें अप्रिय है तो दूसरे की भी अप्रिय होगा। यदि तुम चाहते हो कि ब्रह्मचर्य और तपस्कार मायबन निया जाय तो तुम भी दूसरे के साथ बन करो समता के इसी सिद्धांत का विकास अहिंसा संन्यास वक्त एवं जागरणनियमा के रूप में हुआ।

भगवान् महावीर ने कहा कि कोई व्यक्ति जन्म से छात्र या ब्रह्मचर्य है। ब्राह्मण विषय ब्रह्म और गुरु विभिन्न कर्मों द्वारा प्राप्त है। उनके मध्य में अनेक माधुम्य जन्मता अत्यन्त अथवा आडाल के। कुछ पुत्रावस्था में गुरु को स्वीकार अथवा अन्य प्रकार में अवराधजोवी के। किंतु स्वागर्भित जन्मता लन पर सभी पूज्य हो गए। अहिंसे की जन्मता आडाल के। अजु न मानी स्वीकारा था। गौरी की चार था। उनका तनीय पट्टधर्म प्रभुस्वामी पूर्वविवस्था में गुरु के। चर्यावाला महावीर आदि प्रकृतता नारिया भा सध में सम्मिलित थी। जब य प्राप्त करने के भी महावीर के समकक्ष हो गए।

भगवान् महावीर ने कम वर्णव्यवस्था के रूप में निष्पक्षता का प्रतिपादन किया। उन्होंने कहा—राजा हो या रक्ष, ब्राह्मण

हो या शूद्र स्त्री हो या पुरुष, दुराचरण करने पर प्रत्येक को दुख भागना होगा। हिमा, असत्य चारी आदि पापों द्वारा योनि स्वयं दंड का भागी बनता है।

प्राचीन समय में राजा का ईश्वर का अवतार अथवा अंग माना गया। फलस्वरूप उम गांधर्व के अतिरिक्त आर्षों की मान लिया गया। यह आर्ष भोग एवं पण्डित की पूजा थी। जनधर्म ने उसके स्थान पर योग एवं अपरिग्रह की प्रतिष्ठित किया। उमने कर्ण इन्द्रियलोभुष में सयमी ऊँचा है। भोगी स त्यागी और पण्डित ही न अपरिग्रही। अर्जुन साधु चक्रवर्ती राजा का भी वर्नीय है। त्यागी के सामने सम्राट्टा के सिंहासना और मुकुटों का कोई मूल्य नहीं है।

जनधर्म त्यागी सस्था को सर्वोच्च मानता है किन्तु धावक चर्या के रूप में गाहस्थ्य का भी स्वीकार करता है। धावक के जीवन में स्वाण और भोग का समन्वय होता है। दृष्टि त्याग पर रहती है किन्तु भाग का छोटा नहीं जाता। अपन पात्रों और छठ व्रत में श्रावण सपत्ति एवं शोषण क्षेत्र का संस्कार करता है। समाजवादी उस मर्यादा को ऊपर से लाता है। जन धर्म उमा की स्वच्छापूर्वक अपनाने के लिए है। राजकीय आशा के रूप में लानी गई मर्यादा है और वही स्वच्छापूर्वक अपनाई जाने पर है।

साकल्य का दूसरा सत्त्व स्वतंत्रता है। साधन-स्वतंत्रता और साध्य स्वतंत्रता और साधन-स्वतंत्रता है।

है समस्त बाह्य बंधनों से मुक्ति । जहाँ एक मनुष्य दूसरे मनुष्य का उत्पीड़न नहीं कर सकता । राष्ट्र समाज आदि का कोई बंधन नहीं रहता । घमसस्था गरीर का भी बंधन मानती है । आध्यात्मिक स्वतंत्रता में उसने भी मुक्ति मिल जाती है ।

साधन के रूप में स्वतंत्रता का अर्थ है गुलामी से श्रूने का अभ्यास । घम की दृष्टि में यह गुलामी इच्छा की है । हम जिस वस्तु से राग करते हैं उसे प्राप्त करने की इच्छा हाती है जिसमें द्वेष करते हैं उसे छोड़ने की इच्छा होती है । इन्हीं के कारण अज्ञात और विविध प्रकार के बंधन में फसे रहते हैं । घम इच्छा के इस बंधन से मुक्त होने की साधना है । व्यक्ति ज्या ज्यों इस पर विजय प्राप्त करता है आध्यात्मिक क्षेत्र में आग बढ़ता जाता है । इसी विकास को विविध श्रमिमा में विभक्त किया जाता है । अंतघम इसे १४ गुणस्थानों में विभक्त करता है ।

बंधन के कारणों के रूप में वक् पाच बातें उपस्थित करता है—

(१) मिथ्यात्व—दृष्टि का विपरीत मानना । जहाँ व्यक्ति अपने लक्ष्य को नहीं पहचानता ।

(२) अविरति—अनुशासनहीनता । जिसका अर्थ है दूसरे के प्रति अपम्यपूर्ण व्यवहार ।

(३) प्रमाद—असावधानी । उ नतिगील व्यक्ति का सदा सावधान रहना चाहिए और पतन की ओर ल जान वाली भूला से बचना चाहिए ।

(४) कषाय—बाय घट्टकार आदि मनावेग या विषमता का आरंभ जाने हैं ।

(५) जगुमय ग मन वचन और शरार का अनुचित प्रदर्शित ।

जनपथ स्वतंत्रता का दो रूपों में उपाख्यान करता है । एक आरंभ उमका कथन है कि अपना जावन लगा बना लो जिसमें दूसरे की स्वतंत्रता का अपहरण न हो । रूमा का दूसरा नाम अहिमा है । दूसरी आरंभ उमका कथन है कि एमी सब बस्तुना का छांत्त जाया जा जावन का परावतया बनानी हैं । या बस्तु अपना नही है उमका सहारा जोर समत्व छाह ना । रूमा का दूसरा नाम अपरिषह है । अहिमा द्वेष पर विजय प्राप्त करने के लिये कृता है और अपरिषह राग पर । अथ सब आर्तों इहीं का विचार हैं । जो व्यक्ति इनपर विजय प्राप्त कर लेता है उम चौतराग कृता जाता है । यज्ञ अधस्था ननमाधना का चरम रूप है । त्रिय समता का साधना द्वारा प्राप्त किया जाता है ।

समता

राजतंत्र का तीसरा तन्त्र समता है । समता का अर्थ है—प्रत्येक व्यक्ति का अपनी योग्यता तथा परिश्रम द्वारा ऊँचे सऊँचे पद पर पहुँचने का अधिकार है । प्रत्येक बालक राष्ट्रपति हो सकता है । दूसरा घोर कुल जाति, दिग या प्रात के आधार पर व्यक्ति और व्यक्ति में कोई भेद नहीं है । स्वतंत्रता का अर्थ

है—प्रत्येक व्यक्ति को स्वतंत्र होकर विराम करने का अधिकार। प्राचीन समय में जानि धर्म आदि के नाम पर अनेक व्यक्तियों को विवास व अधिकार से वंचित रखा गया। गुलाम की सत्ता को विवश होकर गुलाम बनना पड़ा। ऐसा न करने पर उसे राजकीय दंड मिलता था। यूरोप के न्यायालयों में ऐसे अभियोग आते थे जहाँ झाड़ू न लगाने, टटनी साफ न करने या गुनाह न करने के कारण व्यक्तिविशेष को नष्ट किया गया। भारत में गुद का बालक यन्त्रिक का उच्चारण कर नेता था ता उसका लिए जिह्वाघेन का दंड था। लोकतंत्र इन विषमताओं को समाप्त कर देना चाहता है। लक्ष्य एक है कि सभी साम्यवादी राष्ट्र समता को मुह्यता देने हैं। उनका कथन कि जहाँ एक दरिद्र है और दूसरा गणतन्त्र एक अभाव पीड़ित और दूसरा शिलासिता में डूबा हुआ, वही दाना का विकास न जानता है। एक का अभाव व कारण विवास की सुविधाएँ न मिलनी दूसरा उसका सुयोग्य कर्ता है। अतः प्रगति के लिए समस्त मानवता को एक ही स्तर पर लाना आवश्यक है। उनकी दृष्टि का धारणा है कि इस विषमता का मुख्य कारण संपत्ति पर व्यक्तिगत अधिकार है। इसी के द्वारा और शक्ति के लिए एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति पर अत्याचार करता है। इसीलिए समस्त संपत्ति पर व्यक्तिगत अधिकार का समाप्त कर लिया।

दूसरी ओर पूँजीवादी राष्ट्र स्वतंत्र उद्योग का महत्त्व देने हैं। उनका कथन है कि प्रत्येक व्यक्ति की मौलिक आवश्यकताएँ पूर्ण होनी चाहिये। प्रत्येक का भाजन वस्तु तथा रहने की

सुविधा मिलनी चाहिए । इन आवश्यकताओं के पूरा हो जाने पर आगे के क्षेत्र स्वतंत्र प्रतिभा एवं परिश्रम के विकास के लिए छोड़ देना चाहिए । सामान्यव्यवस्था किसी को कवि, गणितिक, धार्मिक या कुण्ठ बलाकार नहीं बना सकती । इनके लिए ऐसा क्षेत्र आवश्यक है जहाँ किसी प्रकार का प्रतिबन्ध न हो । इस विकास के बिना मानव मानव ही न रहेगा । वह पशु की भूमिका पर आजाएगा ।

साम्यवादी मनुष्य के बाह्यरूप को अधिक महत्व देता है । सारौरिक आवश्यकताओं का पूर्ति के लिए बुद्धि तथा हृदय पर नियंत्रण का उपाय नहीं मानता । दूसरी ओर पूजोवाद साम्यवादी गुणों का भा उचित प्रथम बना चाहता है ।

जनधर्म में समता के दो रूप हैं—साध्य समता और साधन समता । साध्य समता का अर्थ है वह स्थिति जहाँ सब एक दूसरे के समान हैं । न कोई गायक है और न गीष्प । न बड़ा है न छोटा । न भक्त न भगवान् । इसी अवस्था को मोक्ष कहा जाता है । जनसाधनता सभी मनुष्य की ओर बढ़ने का प्रयत्न है । जिस साधन-समता कहा जा सकता है । सब प्राणियों से मित्रता और सबके प्रति समान बुद्धि के अनुसाधनता का के द्रविण्डु है । वह जया-या जीवन में उतरती है मनुष्य ऊपर उठना जाना है । भक्त भगवान् बनना चंगा जाता है । अनिम अवस्था में सभी भगवान् बन जाने है । उपासक और उपास्य का भेद नहीं रहता ।

जनधर्म यण जानि लिंग आदि के रूप में किसी बयम्य

का स्वीकार नहीं करता। इन आधारों पर न किसी को विनाश सुविधा दी जाती है और न किसी अधिकार से वंचित किया जाता है। जनसभ्य व्यवस्था में चार तीर्थ माने गए हैं—तापु, साध्वी ध्यातक और ध्याविका। इसका अर्थ है स्त्रियों का भी पुरुषों के समान विकास करने का पूरा अधिकार था। मुनिमध में वन्त से एते भी थे जो ज मना चशाल या तवाक्यिन नाच वर्ण क थे। कई पूर्ववस्था में घोर डाकू, हत्यारे या अन्य प्रकार के अपराधजावी रहे हैं। भावना बदलने पर ये सब माहृ गरी और वन्तीय बन गये। उनकी गणना उन पाच पन्ना में होने लगी जिन्हें प्रत्येक गुमनाम के प्रारम्भ में वन्ता की जाती है जो जीवन के उन्नतम आत्मा को उपस्थित करते हैं।

जनसभ्य में उपास्य के रूप में जिन पाच तन्वा की वन्ता की जाती है वे भी गुणरुचि विकार का प्रकट वन्त हैं। यहाँ किसी व्यक्ति को नहीं रखा गया। प्रत्येक व्यक्ति विनाश द्वारा उन पन्ना को प्राप्त कर सकता है और वन्तीय बन जाता है।

याय

लाकतन का चौथा तत्त्व याय है। ग्यायका अर्थ है—मागत को दृष्टि में लाने मनुष्य का दूसरे मनुष्य के समान जानना। ज्ञानी पर समान उत्तरदायित्व समान सुविधाएँ और अपराध न किए गए जायें। यही मह्य माना जाता है कि अपराधी सामाजिक व्यवस्था को ताड़कर अपने का स्वयं उन अधिकारों से वंचित करना है जो उसे निर्दोष नागरिक के रूप में प्राप्त होने चाहिए।

कोई भी राज्य-व्यवस्था सबको एकसी बुद्धि, एकसा हृदय तथा एकसा तरीक नही दे सकती । इस विषयता के हाने पर भी यदि व्यवहार मिश्रतापूण है तो हम परस्पर 'गायक' के स्थान पर पूरक बन जायेंगे । बुद्धिजीवी श्रमजीवी की आवश्यकता का पूण करण और श्रमजीवी बुद्धिजीवी की । इस दृष्टि के बिना कोई व्यवस्था समस्याओं का समाधान नही कर सकती ।

अर्थव्यवस्था

जाधिक सतुल्यता का कायम रखन के लिए दो प्रयाग किए जा रहे हैं । एक ओर साम्यवादी राष्ट्र-सोच पर व्यक्तिगत अधिकार का समाप्त कर रहे हैं । उनका कथन है कि राज्य प्रत्येक व्यक्ति से उसकी योग्यतानुसार काम लेगा । साथ ही उसकी आवश्यकताएँ पूण करेगा । इससे न कोई अधिक मजदूरी कर सकगा और न कोई भुला रहेगा । पूजीवादी राष्ट्रा का कथन है कि भूख या आवश्यकता व्यक्ति को पुष्पाध के लिए प्रेरित करती है उसकी अनायास पूर्ति हो जाने पर मनुष्य पुष्पाध हाने हा जाएगा । अने राज्य का आरम्भ उत्पत्ता हा प्रथम मित्रता चाहिए जहाँ रिता की प्रतिभा या वायव्यता का अनुचित रूप से दबाया जा रहा हो या उचित गुविधाएँ न मिलने के कारण विकास रुका हुआ हो । इनके विपरीत जहाँ रिती मौलिक आवश्यकताओं पर ध्यापण नही होना उम क्षेत्र का स्वतंत्र एगट देना चाहिए ।

अन्तम नोता धाराओं का समायव्य व्यवस्था के जीवन में करना

। बताया गया है कि उसे मरणा तथा आर्यप शेष की सर्वंग
 स्थापना करना चाहिए । आर्य का शेषता रूप मरणा की
 रंग क रंग कहना है और अंग आर्यप शेष की मरणा । क रंग ।
 के साथ मानके रूप से मरणा जीवन में काय आर्यपरी
 गुणा का मरणा कहाई गई है । इस प्रकार आर्यप रंगों को
 स्थापना करना है । अर्यप का कथन है कि ऊपर के मरणा
 रंगों का मरणा अंग में मरणा है । वह मरणा मरणा बन जाती है ।
 उक्त विवरण जब उक्त स्थापनाक मरणाया जाता है तो मरणा
 न जाती है । विवरण में मरणा मरणा मरणा भी स्थापना
 का वह मरणा न जाता है । इसी और स्थापनाक मरणा कृष्ण
 मरणा उक्तम मरणा है । विवरण में मरणा मरणा मरणा
 और मरणा मरणा मरणा है । स्थापनाक मरणा मरणा मरणा
 और मरणा मरणा मरणा है ।

मात्रव्यवस्था

मात्रव्यवस्था को मात्र धर्मों में विभक्त किया जा
 सकता है— (१) द्विमात्र (२) त्रिमात्र और (३)
 चत्वारिमात्र ।

द्विमात्र व्यवस्था में हमारी दृष्टि मात्र अधिकार पर रहती
 है और दूसरे का अधिकार छान कर भी स्थापना करता पाहता
 है । वही एक भावना होता है और दूसरा भाव, एक मात्र दूसरा
 भाव । एक और अधिकार छाना रहता है और दूसरा भाव भव ।
 दोनों मरणा एक दूसरे को मरणा मरणा मरणा है और मरणा मरणा

रहते हैं, कोई गति से नहीं बैठ सकते । अत्याचारी का भय लभ रहता है कि वहाँ विद्रोह न हो जाए । फलस्वरूप वह उत्तरोत्तर श्रूर होता जाता है । दूसरी ओर समाधारण आतंकित रहना और अत्याचारी को समाप्त करने के लिए परमेश्वर एक ही उपाय माँचना रहता है ।

व्यापारिया का सर्वथ विनिमयमूलक होता है । वहाँ ए वस्तु देकर दूसरी प्राप्त का जाती है किंतु दृष्टि मुनाफे पर रह है । जब व्यापारी यह दयता है कि प्राहुक को हर हालत में मा लरोटना पड़ेगा तो वह उसकी विवगता से लाभ भी उठाना चाह है । एमी स्थिति में विनिमय हिंसा का रूप ल जाता है । अन दतना हा है कि प्रथम प्रकार में प्रत्यक्ष हिंसा हुनी है और इस अप्रत्यक्ष । वस्तुन गस्त्र द्वारा मान्ने और भूध मारने में वि अंतर नहीं जना । इसक विपरीत जो व्यापारी उचित मुनाफा लेन समाधारण की सुविधा का ध्यान रखना है वह तुनीम सर्वथ । आर यदने लगता है ।

प्रथममूलक सर्वथ में त्याग की मुख्यता रहती है । माता सतान के लिए अधिक से अधिक त्याग करना चाहती है । स्वयं भूय रहकर मा सनात की भूय मिटानी है । प्रती प्रसपात्र के लिए अधिप्राधिक त्याग करना चाहता है । इस सर्वथ में निजी गुण की उतनी गिना ग्ला रह ती जिनना प्रसपात्र के गुण की ह नी है ।

जन्मभ प्रथम प्रकार का सर्वथा त्याग्य मानता है । निर्दि प्रकार धावन की भूमिका है । वह अनन्त करता है अपराधी

को लक्ष्मी भी देना है किन्तु मुझा व तिर एव मरणा स्थिर कर
 गना है और उमम आने नहीं बना । मरति की मरणा करता
 है निश्च प्रवृत्तिषा को मरणा करता है व रात्रेव का मरणा
 करता है । दनन्नि जीवन म काम आनन्दन कर्त्ता का मरणा
 करता है । माथ ह। यह कहा गया है कि उनका ध्यान सबमभी
 की छार रहना चाहिए । वृ भा वान शक्त का मन्व परिपूर्ण
 त्याग मानता है और उस ओर मरणाक बना बना जाना है ।
 इस प्रकार वह मरण की घोर व शक्त त्याग का और अग्रसर
 होता है ।

मुनि सबस्व त्यागी होता है । मरणा कुछ नहीं जाना ।
 गरीर को भी कबल साधना का उदर बना है । मन्व विप
 रीत जब वह रोगा म थिर बना है और विचार का भी कलु
 पित करने लगता है तो मन्व मरणाक बना बना होता है ।
 यह त्यागमलक सवध ही अहिंसा का शरणागति है ।

ऊपर आ चुका है कि मन्व मरणा और वणभेद को कोई
 महत्त्व नहीं बना । वही मरणा ही मरणा म परस्पर भक्त मुण
 सधवा याग्यता के आधार पर मरणा है मन्व के आधार पर
 नहीं । वग विनेय म मरणाक बना बना मरणा का विचार
 वचिन नहा किया जाना ही मरणाक बना बना है ।

आप में क्या है ? इस प्रश्न की ओर ध्यान नहीं दिया गया । यह शब्द भी क्या का रथा छटा है ।

वर्तमान समस्याओं का वर्गीकरण अनेक प्रकार से किया जाता है । प्रथम प्रकार है 'स्वायम्भूत' और दूसरा 'अहकारभूत' । अहकारभूत भी एक स्वायम्भूत है किन्तु यहाँ इसका अर्थ है जावन की आवश्यकताएँ । हम अपने भाजन निवाम आदि के लिए सामग्री एकत्रित करते हैं । जब वह सबको पर्याप्त मात्रा में मिलती तो मध्य प्रारंभ हो जाता है । इसका मुख्य कारण अभाव या अस्तु की कमी है । इसके लिए एक ओर उत्पादन बढ़ाया जा रहा है दूसरी ओर जनसंख्या को नियंत्रित रखने का प्रयत्न हो रहा है । उत्पादन बढ़ाने के लिए वैज्ञानिक उपाय खोज रहे हैं और जन संख्या को नियंत्रित रखने के लिए कृत्रिम सतति नियमन पर बल दिया जा रहा है । धर्म इन उपायों का विरोध नहीं करता । साथ ही उसका कथन है कि जब तक हमारी मानसिक भावनाएँ ठीक नहीं होती तब तक बाह्य उपाय सफल नही हो सकते । खाद्य सामग्री की कमी होने पर भी हजारों घर ऐसे हैं जहाँ उसे व्यर्थ ही नष्ट किया जाता है । वे ऐसे रईमी का चिह्न मानते हैं । मृत्यु के कारण उतने आत्मा नंग मरते जिनने अधिक भोजन के कारण अस्तु ही नहीं अधिक भाजन करने वाला आलसी और अव्यक्त हो जाता है । भारत में अब भी कई वग ऐसे हैं जो अधिक खाकर पड़े रहना रईमी का चिह्न मानते हैं । त्यागीसंस्था पर भी इसका कम प्रभाव नहीं है ।

स्वाय का दूसरा रूप मर्चय है । आवश्यकताओं के लिए निश्चिन्त होने पर भी हम मर्चय करते चल जाते हैं और मानते हैं कि हमके द्वारा अपनी मत्तान पर बहुत बड़ा उपकार कर रहे हैं । हम तथा धर्म से दगा में प्रत्येक व्यक्ति को भाजन केना राज्य का उत्तरदायित्व मान लिया गया है । वही व्यक्ति को अपने अथवा मत्तान के भविष्य की चिन्ता नहीं जानती किन्तु भारत में प्रत्येक व्यक्ति अपने को अरिभिन मानता है इसलिये मर्चय राष्ट्रीय चरित्र बन गया है । धर्म का कथन है कि प्रत्येक व्यक्ति का अपना भाग्य होता है । उस पुण्याय करना चाहिए । भविष्य को ऊँचा उठाने के लिए परिश्रम करना चाहिए । साथ ही इसकी चिन्ता भी नहीं करनी चाहिए कि आगे क्या होगा ? मर्चय करते समय अपनी तरह दूसरा की आवश्यकताओं का भी ध्यान रखना चाहिए । स्वाय वपम्य की आर से जाता है और वपम्य ही पाप है ।

अहंकारपूर्ति के लिये भी मनुष्य मर्चय करता है । हम अपने को दूसरों से बड़ा बताना चाहते हैं इसलिये विविध प्रशान करते हैं । स्त्री आभूषण का प्रशान करती है पुण्य ऊँचे मकान तथा सवारियों का । ये प्रशान परस्पर ईर्ष्या को जन्म देने हैं । जो व्यक्ति इनकी पूर्ति बस उपायों द्वारा नहीं कर पाता वह चारी डकती आदि अवध उपाय अपनाता है । इस प्रकार ये प्रशानकता को ही नहीं ममत्त समाज का भ्रष्ट कर डालन हैं ।

अहंकार का प्रशान जब वपकित्त होना है तो उस उतना प्रच्छा नहीं माना जाता । सहृदय व्यक्ति को उसमें सहोच हाता

है किंतु सामाजिक रूप से लेन पर यत्न सकार्य नहीं होता। धर्म के नाम पर मिथ्या प्रदर्शन और मनीषा अभियान हुए खून की नदियाँ बहती धर्मजीवी धर्म का दायण किया गया इन सब कार्यों को धर्म की सेवा समझा गया। यहाँ धर्मविनाशक प्रदर्शनो म होने वाला सकोच मित्त गया।

जब अहंकार सिद्धांत का रूप ले लेता है तो उसे पहचानना और भी कठिन हो जाता है। मध्य युग म दूसरा को मोक्ष पट्टुचाने के लिए बरनाए का गइ। शास्त्राण म प्रतिपक्षी को हराने के लिए छत्र, जानि, निग्रहस्थान भादि अर्धध उपाम बरते गए। दूसरा को अपना अनुपाया बनाने के लिए कामकतापूण प्रलोभन भी दिये गये।

जनधर्म दाना प्रकारा का समाधान समता के आधार पर करता है। स्वाध के लिए उसका कथन है कि अपने प्राणा का जितना महत्त्व देने हो उतना ही दूसरे के प्राणो का भी देना चाहिए, इसी का नाम अहिंसा है। इसी प्रकार अपने मायताओ को जितना महत्त्व देते हो उतना ही दूसरे की मायता का भी देना चाहिए। इसी का नाम अनेकात है।

धर्मिकरण का दूसरा प्रकार है (१) अत्याय (२) अभाव और (३) अज्ञान। आधुनिक मत्र म एक पक्षि दूसरे पक्षि पर अत्याय कर रहा है।

राजनिक क्षेत्र म एक राष्ट्र अथवा दुसरे राष्ट्र अथवा एक राष्ट्र पर। धार्मिक क्षेत्र म एक अत्याय विचार के समन द्वारा किया

सिद्धांत इन सब ग्रहकारों को समाप्त करने के लिए कर्मता है
उनके कर्म होने पर अभाव की पीड़ा घट जायगी ।

धर्म इसके लिए और आगे बढ़ता है । उसका कथन है कि
सृष्टिकर्म का आधार आत्मा है । जो बातें उसकी अभिव्यक्ति में
सहायक है वे उपायों के जोर से ही हों । गैरारिक्त सुविधाओं अपने
आप में लक्ष्य नहीं है उन्हें धर्म साधना के लिए उपलब्ध किया
जाता है । आत्मा ऐसा तत्त्व है जहाँ किसी प्रकार का संपर्क नहीं
हो सकता उसका विकास दूसरे के कर्मों पर आधारित नहीं है ।
एक आत्मा के विकास से दूसरे को कोई कष्ट नहीं उठाना पड़ता
प्रत्युत प्रकाश ही मिलता है । उम लक्ष्य में रखने पर सधर्मों का
कोई महत्त्व नहीं रहता ।

समस्याओं का तात्पर्य कारण अज्ञान है । जहाँ जहाँ ज्ञान का
वृद्धि हो रहा है वहाँ ही समस्याएँ सुलझ रही हैं । आकाशवाणी,
दूरदर्शन तथा यात्रा के माध्यमों से साधना में भौतिक दूरी को
पराजित किया । अधिक उत्पादन के लिए नए नए प्रयोग किए जा रहे
हैं । दूसरी ओर बढ़ती ज्ञान ने समस्याएँ उत्पन्न कर रहा है ।
आणविक अस्त्रों के विकास में मानवजाति का अस्तित्व खतरे में
डाल दिया है । इस प्रकार ज्ञान एक ओर धरमन गिड़गुड़ा हुआ और
दूसरी ओर अभिमान । उम मंगलमय बनाना धर्म का काम है । यह
बनाता है कि सत्ता का उपयोग दूसरे को हानि पहुँचाने में नहीं
हाना चाहिए । यह सत्ता गैरारिक्त मानसिक अथवा आधिक
विद्या प्रकार का भा । ।

दैनंदिन जैन अनुष्ठान

पञ्चावश्यक अथवा प्रतिक्रमण

पञ्चावश्यक जनसाधना का प्रधान अंग है । आवश्यक का अर्थ है व अनुष्ठान जि ह प्रत्येक साधक को निम्नप्रति करना चाहिए । उनकी सङ्ख्या छ है—सामायिक चतुर्विंशतिस्नन, पञ्चा प्रति क्रमण कायोत्सम और प्रत्याख्यान ।

१ सामायिक—

सामायिक का अर्थ है जीवन में गमता गान के लिए किया जान वाला अनुष्ठान । इसका - स्मृति है—ममस्य जाय समाय म प्रयाजनं यस्य तन् सामायिकम् । हमारा जीवन विषमताओं से घिरा है । स्व जीवन पर म विषमता बाह्य और आभ्यन्तर म विषमता मन, वाणी और कर्म म विषमता विचार म विषमता व्यवहार म विषमता इत्यादि । इनके कारण आत्मा की स्वाभाविक निमलता नष्ट हो जाता है और विचार पर लभ है । इन्हें दूर करने के लिए सर्वप्रथम नान विचारों का रास्ता जानना है जिसका प्रारम्भ सामायिक में होता है । इसका अर्थ है मन बचन और गरीज का विषमतामूलक प्रशिक्षण का रास्ता । साध का यह जीवनव्रत माना है और शृंग्य प्रतिष्ठा निश्चय समय के लिए स्वीकार

करना है । जन आचार का भूत अहिमा है । उसका अर्थ है पत्र
हान म विपमना का दूर करना । जन नान का मूल अनचात है ।
इसका अर्थ है विनारी क हान म विपमना का दूर करना । नयवा
इसी का विस्तार है । कम मिद्धान सामाजिक विपमना को दूर
करता है । उसका अर्थ है कि सुख-दुःख का कारण व्यक्ति स्वयं है ।
प्रत्येक व्यक्ति अपने मविध्य का स्वयं निर्माता है । जनधम आनि
लिंग आनि आधार पर वपम्य स्व कारण नी करता । उस प्रकार
यह सय सामाजिक का हा विस्तार है ।

सामाजिक अकार करत समय नपपुन प्रविया का त्याग
विधा जाता है । श्रावक इन दो करण तान योग से तथा माधु
तान करण तान योग से करता है । श्रावक निश्चिन समय क लिए
ओर माधु जावन भर क लिए । तान करण हैं—करना कराना
आर अनुमान । योग न—मन वचन ओर शरीर । उन आधार
पर त्याग का अनक अणियाँ है । निम्नतम अणी है—एक करण
एक योग अर्थात् अपने ताय से न करना । तमम दूसर म कराने
तथा अनुमान की दृष्ट रणा है । उच्चतम अणा है—तीन करण
तान योग जधान मन वाणी और शरीर से न स्वयं करना न दूसरे
म वगना ओर न करने घान का अनुमान करना । इन ती क वाच
एक करण दो योग एक करण तीन योग दो करण एक योग
दो करण ती योग ती करण तीन योग आनि क रूप म अनक अणिया
है । तात्या म कतक उन पचाम प्रकार बताए गए हैं ।

से त्याग करता है। ग्रन्थ केवल स्थूल हिंसा का त्याग करता है। उसका लिए अनुमादन का त्याग सम्भव नहीं। (त) उसका उत्कृष्ट त्याग दो कारण, तीन योग से होता है। वही वही जाना देने की भी टूट रहता है। ऐसी स्थिति में उसका त्याग एक कारण एक योग होता है।

साधारणतया पूछा जाता है कि अपने हाथ से करने और दूसरे से करने में हिंसा या पाप की दृष्टि से क्या अंतर है? यद्यपि परिणाम में विनाश अंतर नहीं है फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि दोनों स्थितियों में मानसिक क्रूरता एक ही होती है। हम अनेक ऐसी प्रवृत्तियाँ करते हैं जिनके फलस्वरूप दूसरा की हिंसा होती है। यदि वहो अपने हाथ से करती पड़े तो हिंस्र किचा जाये।

सनापति मेकाथर ने हिरागिमा पर अणु बम गिराव की आज्ञा दी और लाखों निराह भस्म हो गए। यदि वह काय उस अपने हाथ से करना होता तो सम्भवतया हिंस्रकिचा जाता। निर्दोष बालिका और महिलाओं पर प्रहार करते हुए उनका हाथ काप जाता। इस प्रकार हम देखते हैं कि स्वयं करने में जितनी क्रूरता अवहित है—उतना दूसरा में कराने में नहीं है। अनुमोदन में इसकी और भी कम हो जाती है। जित्त व्यापारी का हृदय अपने सामने बट अधास्त पाचक को लपकर द्रवित हो जाता है वही अप्रत्या रूप से सच्चा परिवारों की दुःखा का कारण बन जाता है।

सामाजिक में मन बचना और गरीबों की कुप्रवृत्तियों का त्याग

किया जाता है। हम इसका तुलना सध्या जीव योग से कर सकते हैं। सध्या में माधव मन की चञ्चलता का दूर करके उम ईश्वर या उसके प्रतीक के रूप में मूर्ध पर स्थिर करता है। योग का अर्थ है मन की विविक्तता का राकना। समर्पित उमा का नामान्तर है जहाँ मन ध्येय में जाना जाता है। अनुसाधना मन के साथ बाणी और शरीर के नियंत्रण पर भा बल देती है। उसकी धारणा है कि गारारिक स्थिरता मानसिक स्थिरता की पहला सीढ़ी है। योगज्ञान में भी आसन के रूप में इस स्वीकार किया गया है। इसी प्रकार अनियंत्रित बाणी मन को भी अनियंत्रित कर देती है। अतः तीना का ग्दय में रचना आवश्यक है।

चतुर्विंशतिस्तव

द्वितीय आवश्यक चतुर्विंशतिस्तव है। इसमें चौबीस ताथकरा की स्तुति की जाती है। पहला मन की मन ध्यान गारा उसके पदधान् बोलकर।

जा ध्येयित जनधम स्वीकार करता है उस देव गुरु और धम इन तस्वो में आस्था प्रकट करनी होनी है। भारतीय साधना में देवतत्व के तीन रूप मिलते हैं। प्रथम रूप ईश्वर अर्थात् विश्व नियामक का है। उसी को गिब विष्णु आदि विविध रूपा में प्रस्तुत किया गया है। यहाँ उसकी स्तुति उम प्रमन करन के निष्ठा की जाती है। द्वितीय रूप पतञ्जलि के प्रायः गन में मिलना है। यहाँ वह कर्ना अर्थात् प्रायः स सवथा मुक्त है। दुबततः एव बराण्या ने उमका कभी स्पर्श ही नहीं किया। तृतीय रूप जद

एव बौद्ध परम्परा का म मित है । यहाँ साधारण ध्ययिन साधना द्वारा दया हृत् आत्मनिश्चय का प्रकट करना है । जब राग द्वेष तृष्णा आदि विचार सवथा हट जात है तो जीवात्मा ही परमात्मा बन जाता है । उसी को अहत या अरिहत कहा जाता है । कुछ अरिहत आत्मकल्याण के साथ पर कल्याण के लिए भी प्रवृत्त हात है । उह उन परम्परा म तीथकर और बौद्धपरम्परा म बुद्ध कहा गया है ।

प्रत्येक तीथकर धर्मोपन्य करता है और जीवन समाप्त होने पर माग म पहुँच जाता है । वह दुःखारा नही आता । युग परिवर्तन के साथ तीथकर भी नय नय हात है ।

जबधम म काल का चक्र की उपमा दी जाता है । उसमे बारह गार हैं । छ उत्था का पकट करत है और छ पतन को । इ हा का क्रम उत्सर्पिणीकाल तथा अवसर्पिणी काल कहा जाता है । प्रत्येक म चौतीस तीथकर हात है । वनमान अवसर्पिणी काव है । राम प्रथम तीथकर शृणुमन्त्र हुण धोर अन्तिम महावीर । अनुविगतिस्त्व म ही की क रना है ।

इसम नागस्त का पाठ वाला जाता है । पहला गाया निम्न लिखिन है

सोमस्म उज्जोयगरे धम्मतिथत्तरे जिण ।

अरिहते क्खिस्सइस्सत्थ उयोत्तपि क्वयत्तो ॥

मै विन्ध म प्रकाग करनगा, धमतीथ के सस्थापक, राग

प्रति किसी प्रकार का अविनय किया है तो उसके लिए क्षम माँगता हूँ ।

अन्यत्र में नवकार मंत्र का बहुत महत्त्व है । प्रत्येक वायुः प्रारम्भ में उसका पाठ किया जाता है जो इस प्रकार है—

नमो अरिहताय
नमो सिद्धाय
नमो आयरियाय
नमो उवाञ्जायाय
नमो सोए सव्वमाहूण

अरिहन की व्याख्या ऊपर आ चुकी है । व ही शरीरत्याग के पदवात सिद्ध कह जाते हैं । इन ज्ञाना को देवतत्त्व में गिना जाता है । तृतीय पद में आचार्यों की वदना की गई है । वे श्रमणसत्ता की व्यवस्था और आचार का पालन कराते हैं । चौथे पद में उपाध्यायों का वर्णना है । उनका वायु पठन पाठन है । पंचम पद में समस्त साधुप्रा की वर्णना की गई है । एक बात उल्लेखनीय है कि यहाँ किसी व्यक्ति की वर्णना नहीं की गई । पाँचा पद विभिन्न गुणा और धार्मिक व मन्त्रा को प्रकट करते हैं ।

जब गृहस्थ मुनियों के दर्शन करने जाते हैं तो निम्नलिखित मंगलपाठ सुनाया जाता है—

चत्वारि मंगल—

अरिहता मंगल । सिद्धा मंगल । साहूमंगल ।
केवलीपण्णत्तो पम्मो मंगल ।

घत्तारि लोगुत्तमा—

अरिहंता भागवता । सिद्धा भागवता । मातृ
लोगुत्तमा । केवनिपण्यरा धम्मा भागवता ।

घत्तारि मरण पटवज्जामि—

अरिहंता मरण पटवज्जामि । सिद्धा मरण पटवज्जामि ।
मातृ मरण पटवज्जामि । केवनिपण्यरा धम्म
मरण पटवज्जामि ।

इस मरण पाठ में प्रथम श्री का सम्बन्ध देवता के साथ है
श्रीय का महत्त्व व साथ ही चतुर्थ का धर्म के साथ ।

प्रतिश्रमण—

चतुर्थ आवश्यक प्रतिश्रमण है । शक्यत वे अपने बड़े-बड़े
। हिमा की जाती है प्रतिश्रमण में सावधानतापूर्वक कर दोषों
निर्णय पश्चात्ताप करता है । शून्य रूप में अपने अपने कर्मों
। दोहरात है और जानकर या अनजान है या गई स्थितियों
लिए पश्चात्ताप करता है । प्रत्येक कर्म के फल में जाना जाता है
वच्छा मि दुककक अर्थात् मेरा दुष्कृत किया है । उसने
य तीन पक्ष बोले जाते हैं अर्थात् निर्णय निर्णय अर्थात्
वर्तु में उन कार्यों में पीछे रहता है तथा निर्णय कार्यों
हैं गति समझना है इस प्रकार प्रतिश्रमण उनमें दूर पक्ष
रूप किया जाता है ।

जन साधना मगस्थ के लिए नारदना का विधान है। प्रथम पाचवागवययसिंसा म य अवीय ब्रह्मवय तथा प्रपरिश्रहक मा है। मुनि उगना पाचन पूणरू स कता है। अत उसरं त्याग व म्नायन कना जाता है। गस्थ आगिक रूप से त्याग करता अत उ ह भणुवत कहा जाता है। न कना का सवष सामाजि जीवन व साथ है। तत्परचान् तीन गुणयन आत है जना गृहस शोधन क्षेत्र तथा दनन्नि यउहार म प्रान वात्री वस्तुघा व मर्घना करता है। एम कार्यों स भा धनग रहन का निश्चय करत है तिनम यथ ही दूपर का वष्ट पहुचाने की सम्भावना हा अतिम चार निशासन कहे जात हं। वं भात्मगुडि व तिष्ठ हं पत्यक सन व पाच अतिचार है। एनगे पन्व और ना पाठ धारि जात है। उनम प्रथम का सम्बन्ध स्वाध्याय प्रथवा गारवाध्ययन व साथ है। उगव तीर अतिचार है। द्विनाय का मन्त्र व सम्यक्स प्रयात श्रमा व साथ है। त्रमे पांच अतिचार है। अष्टमप्रः के साथ पन्व समाना का पाठ किया जाता है। इसका अर्थः एम व्ययमाय जिनम श्रुत अधिक निमा होनी ना। जम बर्त्स बमान के लिए जगत म ध्यान गमाना कायक प्रनाग निरारा वुत् रचना क्यारि। अत म मलेखना सन है।

जनधम म स गरीर प्रथवा जीवन ध्यान आप म सत्य नर्द है। उगरी उपायेपता आत्मविदाम व साधन हाने म है। अतिम धयस्था म जब साधक यह स्थना है कि वं आत्मगुडि का साधन होने व स्थान पर उमम साधक बन रहा है। आत्मचिन्तन व स्थान

उप का विनय रहन तथा ह ना उप नी गान्धर्वक पाठ
 । ह । उप नी पाठ अनिवार है । इस प्रकार कुम निदान
 ग्यारों का विनय एवं पाठ किया जाता । सबसे प्रथम उनका
 न घण्टी मन नी मन विनय करत है । फिर पाठ करत है ।
 न गान्धर्वक का वनों क साथ पढ़ा जाता है ।

। तथा प्रतिचार

स्वाध्याय विषयक शीघ्र प्रतिचार निम्नलिखित है

- १ जमाइदु स्वाध्याय काल समय जमाई ल्या ।
- २ इन्द्रवामदिन — गान्धर्वक अपवा घण्टी की गान्धर्वक
 ना । उनका वम बोलना ।
- ३ हीनाम्बर — विमा अम्बर को छोड़ना ।
- ४ अम्बर — घण्टी अम्बर बोलना इना इना अम्बर
 मिलाता ।
- ५ पाण्डेन — विमी पण्डे का छार पण्डे ।
- ६ विनय न — नम्रता घण्टी गान्धर्वक का घण्टी न
 करमा ।
- ७ पाण्डेन — मन घण्टी गान्धर्वक का घण्टी न ।
- ८ पाण्डेन — उनात अनुनात गान्धर्वक का उनात न गान्धर्वक ।
- ९ मुण्डाअम्बर — अध्येयन घण्टी गान्धर्वक ।
- १० द प्रतीचिद्धन — गान्धर्वक का घण्टी न ।

- ११ अकालस्वाध्याय—अनात् अथवा निपिद्ध समय म स्वाध्याय करना ।
- १२ कालस्वाध्याय—विहित समय म स्वाध्याय न करना ।
- १३ अस्वाध्यायेस्वाध्याय—अस्वाध्याय म स्वाध्याय ।
- १४ स्वाध्याय अस्वाध्याय—स्वाध्याय म अस्वाध्याय ।

साम्प्रत म आया है कि यदि नाम ही मनुष्य अथवा पशु वा गव पडा हा करण अ न हा रहा हा अथवा नगर पर काड सकत छाया हो गयी परिस्थिति म स्वाध्याय नहीं करना चाहिए ।

ग्यारहवाँ और बारहवाँ अतिचार काउ की अपेक्षा म हैं । तेरहवाँ और चौदहवाँ क्षेत्र अथवा परिस्थिति की अपेक्षा म ।

सम्यक्त्व व्रत

सम्यक्त्व व्रत म नीचे लिखा पाठ बाटा जाता है—

अरिहतो महू देवो जाव जीवामे मुसाह्वणो गुरुणो ।
जिणपणत्त तत्त इय सम्मत्त मए महिय ॥

अर्थात् अरिहत मने देव हैं माघु गुरु और जिन प्रनिपातित धम नी मार है । म इस सम्यक्त्व को ग्रहण करता हू ।

म व्रत क पांच अनिचार निम्नलिखित हैं—

- १ पादा—साम्प्र अथवा जिनवाणा म गत्त करना
- २ का ता—द्वय मन की मार भुक्ता
- ३ विचिकित्सा—मन का डावाडोड रहना

४ परपाप-प्रणाम—अप्य मनावदम्बा की प्रशंसा

५ परपाप-वस्त्रव—अप्य मनावदम्बा व साथ धनिष्ठना

उपयुक्त अनिचार आपादन मधुचिन्त मनावति को प्रकट
 गने हैं। किन्तु माधना के क्षेत्र म यन् आव यन् है। मत्वागत्य
 न विचार करने समय हम प्रत्या पण को समान स्वर पर रख
 लत हैं। किन्तु उन्न चन्ना होना है ना किमा एक ना माग का
 लनना हासा। मन्वा माधक दूमर मागों को दिन्ना नही
 गता। उनकी चर्चा म न आवर अपने माग पर पूण निष्ठा के
 पि दटना चगा ज्ञाना है। धारा शोर ध्यान गवन वाला आगे
 गी बढ गता। इमी दष्टि का सामन रहकर उपयुक्त वन
 एक धार म चित्त का नवानाल शोना अनिचार माना गया है।

यम अनुग्रह अहिंसा

जनधर्म म जीवा के ना नेट किए गए है। जन और स्था
 र। पूरवा जल अग्नि वायु तथा वनस्पतिया व आव दिनाथ
 शक्ति म आन है। वीरे मकाडा गे लकर मनुष्य पयत्त चन्ने
 लत जाने जाव जिनोर काटि म। तहम्भ का स्थाउर जायों
 हिंसा का स्थाग नही गता। जन जीवा म भा वन् अगधी
 म ल्पट न मचना है। जो जिमा अमाधप्राना म हा जानी है उगे
 मका भी स्थाग नही गता। वह केवल निम्पराध जन जीवा
 म स्वेच्छापूर्वक माग्ने का स्थाग करवा है। इन वन व पाप
 विचार निम्नलिखित है—

- १ वध—पगु अथवा मनुष्य का गण्टदायी वधन म छाटना
- २ वध—बठार ताडन करना ।
- ३ शतविक्षत—गरीर में घान पर डालना ।
- ४ अनिभार—अधिन बाझ लागना ।
- ५ भक्तपानव्युच्छेद —ममय पर भाजन तथा पानी न देना

उपयुक्त अनिचार उक्त अवस्था को प्रकट करते हैं जब पगु पानन ग्राहस्थ्य वा अनिवाय अग था । मुख्य दृष्टि आश्रितो : साय व्यवहार का है । वे पगु हो अथवा मनुष्य ।

द्वितीय अणुव्रत सत्य

इसमें स्थूल मयाचार का त्याग किया जाता है । उन्हाहरण : रूप में विवाह सम्बन्धी वार्तालाप के समय कथा की श्राव्य अथवा अथवा वाता के सम्बन्ध में झूठ बोलना । स्तम्भन करते समय पगु अथवा भूमि के सम्बन्ध में झूठ बोलना । झूठा सागा करना । जानम्तावेज लिखना इत्यादि । इस व्रत के पाच अनिचार निम्न विहित हैं । -

- १ गृहमाभ्याख्यान—आवग म आकर मिथ्या आरा लगाना । यदि जानबूझ कर आराप लगाया जाता तो बह अनिचार न रहकर अनाचार न जाना है बह। व्रत सवथा टूट जाता है ।
- २ गृहस्याभ्याख्यान—किसी की गुप्त बात प्रकट करना ।

- ३ स्वगर्भमन्त्र—पत्नी को गुप्त चार्ते प्रकट करना ।
- ४ श्लोषदण - शत्रु उपद्रव दना ।
- ५ कुन्तलघ्न- मूठे सम्भाव्य विधना ।

तीसरे अस्तक

इसमें मुख्य रूप से चारों का स्वाग करता है । इस अस्तक का श्लोक नाम अज्ञाना नि विरमण है अथान् विना नि पराद् नु कान् सना । रूपेण चारी च रूप मे मेष मगाना गाठ रना अथनी चावा लगाकर विमा का लाग सोचना आदि विगनाई गई है । इस अस्तक पांच अन्विचार निम्नलिखित

- १ स्नेनाह्वय—चार दाग उवा गयी वस्तु श्लोकार करना ।
- २ तम्कर प्रयोग- चार का नियुक्त करना ।
- ३ विरहनाद्यानिषम परस्पर विराधा रा रा का सीमा का अन्विचरण ।
- ४ कुन्तली कुन्तमान—अन्त नापनील राना ।
- ५ मन्त्रनिष्काम्यप्रहार—तकली वस्तुएं वेचना ।

हैं—१ स्वप्नार सनाप २ परत्नारविचारा । द्वितीय काटि म
 वचन परतीया क माथ सम्पक का त्याग किया जाता है, मामा
 या की छत्र रती है । इमक पाथ अनिचार निम्नलिखित हैं—

- १ त्वत्किपरिगहातागमन कुछ समय के लिए परि
 गहात स्त्रा स सम्पक ।
- २ अपरिगहातागमन—वश्यागमन ।

उपयुक्त दो विभाजन इस बात का पकट करत है कि उन
 त्तिना अस्थायी विवाह भी हान थे । किसी स्त्री का कुछ समय
 के लिए खरीद लिया जाता था । उस अवधि में वह किसी दूसरे
 के साथ सम्पक नहीं रख सकती थी । सब विपरीत वश्या स्व
 तन्त्र हाता था ।

- ४ अनगक्रीण - कामशमना का प्रोत्साहन देने वाला
 पीडाए ।
- ८ परविवाचरण—जय स्त्री-पुरुषों के विवाह यावा
 सम्पक में ही लता ।
- २ कामभोगनाश्रयिण - योनिसम्बन्ध की ताव्र अभिलाषा

गहस्य का अपना स तान एवं कुटुम्ब के एक लड़किया का
 विवाचक ना पछता है । माय नस जादि पशुजा का भी सम्बन्ध
 कराना हाता है । अत उह दृष्टि में रगकर इस अत का एक
 करण याग में विधान है ।

पंचम अष्टांगत परिश्रुत्परिमाण

शुनि सम्पत्ति का पूजनवा त्याग करना है । यहाँ इस वन का नाम श्रुतिपरिश्रुत् है । न स्व उसकी मर्यादा करना है तन्नुसार वन का नाम भी परिश्रुत् परिमाण है । इसमें नौ प्रकार की सम्पत्ति विनी जाया है—

- १ धन— धन अथवा कृषिभूमि
- २ वास्तु— विवाह अर्थात् मरान
- ३ शिष्य— पातक नाशक धान अथवा धानुषा वा अर्थात्
- ४ सुरभ— मर्गे वा मया ।
- ५ धन धरतु सामान
- ६ धान्य— ग्राह्य अथवा
- ७ शिष्य— नाम धान
- ८ धनुष— ग्राह्य भग हाथा धाने अथवा
- ९ कुप्य— धार अथवा

यहाँ निर्दिष्ट मर्यादा का अतिव्रमण ही अतिव्रत है । प्रथम आठ वा चार युवता कल्प में जाया जाना है और शिष्य का स्वाध्याय । नत प्रकार पाच अतिचार ही जात है ।

अनघम का अर्थ है कि अधिक सम्पत्ति के लिए व्यक्ति या स्वल्पपूर्वक सम्पत्ति की मर्यादा का अतिव्रत । उपरस जाया गई मर्यादा त्याग कस्याप परिश्रुत् परिमाण है ।

षष्ठ व्रत

इसमें महस्य शायण व क्षत्र की मर्यादा करता है। मुक्ति किसी का शायण नहीं करता। अतः उसका लिए क्षेत्र सम्बंध कोई मर्यादा नहीं है। पाच अतिचार निम्नलिखित हैं—

- १ उच्च दिक् परिमाणातिशय
- २ अधो दिक् परिमाणातिशय
- ३ त्रिक दिक् परिमाणातिशय—दक्षिण पूर्व पश्चिम उत्तर तथा दक्षिण चार दिशाएँ आ जाती है।
- ४ क्षत्रवर्द्धि—मर्यादा क्षत्र का बन्ना लना।
- ५ स्मृत्यन्तर्धान—क्षत्र मर्यादा का विस्मृत होना।

इसी व्रत के साथ रात्रि भाजन का परित्याग भी गिन जाता है।

सप्तम व्रत उपभागपरिभोगपरिमाण

इसमें दानदिन उपयोग में आने वाली वस्तुओं का मर्यादा की जाती है। खाद्य पद पचन आगम निवान वस्त्र बिलग आदि के रूप में यहाँ छ बीस बातें गिनाई गई हैं। पाच अतिचार निम्नलिखित हैं

- १ सचिन्ताहार—मर्यादा का अतिशयण करके सचित वस्त्र का गचन।

- २ सचित्तप्रतिबद्धा इर—एसा वस्तु का मन्त्र जो सचित्त क माथ सटा र्त्ता ।
- ३ अणवव औपदि भरण—कच्चा तटा वूटिया का मन्त्र ।
- ४ दणवव औपदि भरण—अणवकी जटा वूटिया का मन्त्र ।
- ५ तु—औपदिभरण—एसा वस्तुभा का भरण जिनम प्राण्य अण घोडा हो, स्वाय अणिक ।

पट्टह वसादान

इसा दान क साथ पट्टह वर्मान भा गिन पान है । महस्व ही एस धय न । कन्व चान्ति जिनम अधिक गिया जाती हो । वर्मानम म उर्दा की गणना है ।

- १ अणवव वम—कायका का ध्यवनाय । इसक का प्रकार है—कायका बनाना अथवा इन् पकाना आन्ति एस ध्यवनाय करना जिनम वन्व याना जाग जानानी पट्ट ।
वनवम जगल का टका देना । अन्तिवा वर्मान अथवा वर्माना क लिए जगल का कटवाना ।
- २ अणवव वम—बल गान्तिवा का धय । अन्म भा बनाना और विराण पर चाना दाना आ जान है ।
- ३ अणवव वम—भाड पर बल याना खबर आन्ति लान्त का राम ।

- १ रकोन्वम रूप धारि न लिए भूमि विस्को का व्यवसाय ।
- ६ दन्तवाणिज्य—हाथी आदि पशुओं का दाली का व्यवसाय ।
- ७ कर्तवाणिज्य—समरी गाध आदि व कृषा का व्यवसाय ।
- ८ रस वाणिज्य—मन्त्रि आदि का व्यापार ।
- ९ लाभा वाणिज्य—लाभ का व्यापार ।
- १० निग वाणिज्य—विभिन्न प्रकार के विषा का व्यापार ।
- ११ यत्रपीलन कान्ह में गरमा आदि पालन का व्यवसाय ।
- १२ निर्लोछन कम असा का निर्लोछन असात् नपुसक बनाने का व्यवसाय ।
- १३ दावाग्निनापन जगत् म जाग लगाने का व्यवसाय ।
- १४ मराद्रतछागनापण सरावर दह तडाग आदि को सुखाने का व्यवसाय ।
- १५ जगनाजननापण दुग्गचारिणा मित्रया द्वारा व्यवसाय चणाना ।

अष्टमस्रत—अनथदप्लधिरमण

अनथदप्लधिरमण का अर्थ है एक काय जिगम अथवा नसर को हानि पहुँचाना है । मित्रा का नाम नया होता । नसर चार प्रकार है -

- १ अनथदप्लधिरमण—जब म वर विचार लागे । वदूने

जथ है समता की जाका भे लान का अभ्यास । साधारणतया
 म न घड़ी ज्यों अहनाशन मिन क लिंग अपनाया जाता
 है । पाच अतिचार निम्नलिखित है—

- १ मनादुष्प्रणिधान—मन म बुर विचार जाना
- २ वचनदुष्प्रणिधान—बाणी का दुस्प्रयोग
- ३ कायदुष्प्रणिधान—अनुचित गारीरिक हलचल
- ४ विस्मृति—भूल जाना कि मैं सामायिक म हू
- ५ अनवस्थिरता—अस्थिरता ।

दशम अत देशाचकाशिक

इसमें यथाशक्य कुछ समय के लिए तिसर बायीं का त्याग
 किया जाता है । साधारणतया कभी यह अत रात्रि के लिए अपनाया
 जाता है और कभी दिन रात के लिए । उस अवधि में साधक
 घर में सम्बन्ध छोड़कर धर्मस्थान में रहता है । पाच अतिचार
 निम्नलिखित है -

- १ आनयन—बाहर से किमा वस्तु की भजना ।
- २ प्रपण—अपनी वस्तु की बाहर भजना ।
- ३ सांन्युपास—बाण द्वारा बाहर वाता के साथ सम्पर्क
 स्थापित करना ।
- ४ स्थानुपास—पगारा द्वारा अपनी वात करना ।
- ५ पुद्गलप्रयोग—कोई चीज फेंक कर सवेन करना ।

- ३ जीवितान्ता—प्रधिर त्रिा तर जीने की आकाशा
- ४ मन्नागना—कष्ट से घबरा कर शीघ्र मरने की दृच्छा
- ५ कामभान्ता—किगा अद्री दृच्छा को पूण करन की आकाशा ।

सी का समाधि मरण बना जाता है ।

अठारह पाप

इसी के साथ अठारह पापा की गणना भी की जाती है ।

य है—

- १ प्राणातिपात—हिमा
- २ मपावा—अमत्य
- ३ अदत्तानन—धम्येय
- ४ मयुन—अग्रद्वय
- ५ परिग्रह—धनमम्पति का मग्र
- ६ पाथ
- ७ मान
- ८ माया
- ९ लोभ
- १० राग
- ११ द्वेष
- १२ क्रोध
- १३ जम्वालयान - मिथ्या आरोग
- १४ वैग य—दुगलसीनी

- ६ प्रत्ययवृत्ति—गान्धी साहना द्वारा माध प्राप्त करने वाले होने वाले
- ७ बुद्धबोधितमिद्ध—उपस्था द्वारा ज्ञान प्राप्त करके मिद्ध होने वाले
- ८ स्त्रीलिंगमिद्ध—स्त्री के रूप में माध प्राप्त करने वाले
- ९ पुरुषलिंगमिद्ध—पुरुष के रूप में माध प्राप्त करने वाले
- १० नपुंसकलिंगमिद्ध—नपुंसक के रूप में माध प्राप्त करने वाले
- ११ स्वलिंगमिद्ध—जनसाध के रूप में माध प्राप्त करने वाले
- १२ अयलिंगमिद्ध—जनेतर रूप में माध प्राप्त करने वाले
- १३ गुणधर्मलिंगमिद्ध—गुणधर्म के रूप में माध प्राप्त करने वाले
- १४ एक मिद्ध—एक ही माध प्राप्त करने वाले
- १५ अनेक मिद्ध—सामूहिक रूप में माध प्राप्त करने वाले

उपरोक्त भक्त जन हट्टि की व्यापकता का प्रकट करते हैं। साधक किसी तीर्थतर अथवा आचार्य की परम्परा में हो सके वा स्वतंत्र रूप से ज्ञान प्राप्त कर अथवा स्वयं आत्मचिन्तन द्वारा स्त्री या पुरुष जन साधु के रूप में या अथवा गुणधर्म के रूप में प्रत्येक व्यक्ति साधना एवं अर्पित चित्तगुद्धि द्वारा मोक्ष प्राप्त कर सकता है।

समापना

इस योग्यता नाम जीवदानियों का गणना और मरम
वाशयना की जाती है । अन्त-म नामे निम्ना पाठ बोलत :-

शामिमि म व आवा
मन्हे जीवा ममनु म ।
मिना म मन्वभूमम
वर मन्व न वेणइ ॥

मै अपना आर म मव जीवा की क्षमा प्रणय करना हू मव
इस मुझे क्षमा प्रणा करें । मरी मन्व मिथना है निम्ना न वर
ही है ।

अगरह नाम बन्ना और समापना प्रतिक्रमण अथवा अनुप
वर्णन क हा परिणित है ।

: कायोत्सव

पथम आचरण का नाम है । नाम का अर्थ है-गगर और
मम का अर्थ है परिणय । मम कुल म के लिए सारीरि
मम का रवान करके मानसिक गिनन किया जाता है । अत
उपना म इनका बहूत पन्थ है और आत्म-दि के शयन अनु
मान क प्रारम्भ से आरम्भक माना गया है । यह किया प्रणिता
- कर से हा अथवा मन्व-दि मन्व का प्रमाणिकता क कर से
: अथवा मन्व-दि मन्व की प्रमाणिकता क कर से । मानसिक

चि ता साधना का मौलिक पाठ म आग बढ़ाए हूय म
 भूमिका पर पहुचा दा है । वायोत्सग म पहुने तत्सम्बन्ध
 निश्चय क रूप म तन्मन्त्रिमित पाठ बाना जाना है—

तस्म उत्तरीकरणेण पापछित्तरक्षण विताहिकरण
 विमहताकरणेण पावान कम्मान निम्वायणदृष्टाण, ठाणमि वा-
 र्मण्य ।' अथात् प्रातःप्रमण की उत्तरत्रिया क रूप म प्रायश्चित्त
 करने क लिए विगुद्धि के लिए आत्मा को गत्यरहित बनाने
 और पाप कर्मों का नाश करने के लिए वायोत्सग प्रारम्भ कर-
 हू । वायोत्सग गाधे ल्पे रह करमा बठ कर लोनी प्रकार
 किया जाना है । अगका लेख कर भा कर मरता है ।

अन साधना म इस सय जेष्ठ तप माना गया है ।

६ प्रत्याख्यान

छटा अनुष्ठान प्रत्याख्यान है । इसका अर्थ है परित्याग ।
 साधक आत्मगुद्धि क रूप म प्रतिज्ञित यथागति किमी म किमी
 प्रकार का त्याग करता है । हमने लिए साधारणतया दस प्रकार
 क प्रत्याख्यानो का विधान है । जग—

१ नवरात्रमा—सूर्योत्थ के ५ चात् ४८ मिनट तक कुछ न
 खाना पीना । हमकी प्रति नमस्कार म न पढ़कर की
 जाती है । एमीलिए हम नवकारमी कहते हैं । नवकार
 नमस्कार का अणभंग है ।

२ पोरिया—एक पदर तक कुछ न खाना पीना ।

है। हमारा अनुष्ठान दैनिक कस्तूर के भंग मन्त्राचार किया जाता है। सायंकाल सूर्यास्त होने पर और प्रातः सूर्योदय से पहले। सायंकाल का प्रतिश्रमण तिन म होन वाली भुला क लिए किया जाता है अतः उग गयसी (म० दशमिक) कहते हैं। प्रातः काल का प्रतिश्रमण राशि मन्त्राधी दोषा के लिए किया जाता है अतः उगे गयसी (म० राशिक) कहते हैं। पन्द्रह तिन क पचास पाक्षिक चार महोने क पश्चात् चानुमोक्ति और वष क पश्चात् मावसरिक प्रतिश्रमण किया जाता है। मावसरिक प्रोत्श्रमण का तिन जनधम का गणन बना पत्र है। जा यक्ति उस तिन हृत्यगुद्धि नहा करता उगे अपने का जन कहन क अधिकार नहीं है। इस अवसर पर उपवास रखा जाता है और सायंकाल पूरे मनोयोग क साथ प्रतिश्रमण किया जाता है। दिन म आलोचना होती है। यह दिन आत्मिकता का प्राकृत रूप है। माघ साहसी, गवक तथा ध्यानिवा सभी धमस्वान पर एकत्रित होने है। धमगुरु प्रवृत्तिमय जीवन म सम्भावित पाप क गणना करता है और उनक तिन पश्चात्ताप करने को कहना है। सभी धोता मित्रामि त्रिदंड कन्तर पश्चात्ताप प्रकट करते हैं। यह समय के तिन कुछ का यामक रचनाएँ ना बनी हुई है। उनका भी पाठ किया जाता है। मन्त्ररेखा की चौपाई बहुत प्रसिद्ध है।

दूसरे तिन प्रत्येक गन्ध्य मुनि गणन क तिन गाना है। उनक क्षमाप्राधना करता है। साथ ही परिचित वग के पास जाता है। धम स्थाना पर बसे हुए परिचित वग के पास क्षमा-

जनधर्म और हमारा व्यक्तित्व

जनधर्म के अनुसार हमारा व्यक्तित्व आत्मा और तीन गरीरों का बना है। तामाण शरीर तैजस गरीर और औन्नतिक गरीर। इनके अतिरिक्त दो गरीर और हैं वज्रियक और आहारक। ये दोनों लिंग अर्थात् योग विभूति के रूप में प्राप्त होते हैं। देव और नरक यानि में औन्नतिक के स्थान पर जन्म के साथ ही वज्रियक शरीर होता है।

दूसरे दुर्गता में भी हमारे व्यक्तित्व के घटक कई गरीर माने गये हैं। उनमें साथ ही जन्म का तुलना करने पर बहुत ही नई बातें जानने का मिलती हैं। हम भी बहुत ही तथ्य हैं जिनका जन साहित्य में अधि स्पर्शीकरण नहीं मिलता।

सब प्रथम हम यायन्त का खत है। उसका जन जन्म के साथ विषय साम्य नहीं है फिर भी तुलना के लिये उसका ज्ञान धारा आवश्यक है। यायन्त में हमारे व्यक्तित्व के घटक चार तत्व हैं—आत्मा मन इन्द्रिया और धरम।

आत्मा—विभु तथा नित्य है। वह छटा बना नहीं। ज्ञान। जन धर्म उस शरीर परिमाण मानता है। आठ गरीर में छोटा हो जाता है और बड़े गरीर में बड़ा। पलम्बरूप बन् मावयव भा है। यहाँ एक प्र न होना है कि आत्मा के प्रत्येक अवस्था होने

विन्दु म गुण गान्धर्व तथा ३ । शरण सामग्री उरविष्ट होने पर उत्पन्न ज्ञान है और ज्ञान आग सामान्य ही ज्ञान है मुक्त अवस्था म कर्म मण नी रहता । एक विपरीत जन दण ज्ञान जीव गुण को स्वाभाविक मानता है । वही ज्ञान क माता और निराकार क रूप म, भूत कर गिा गए है । आत्मा क लीया स्वाभाविक रण अनन्त वाय है त्रिगुणो तन्ना प्रयत्न : माध का जा सकता है । जय रणन क अनुभार मुक्त आत्मा : अनन्त योग हाता है नि त क कथल पवित्र रूप म रहता ३ प्रिया म परिणत न्हा हाता । माय रणन वहा प्रयत्न का अभा मानता है और जन रणन पवित्र मानन पर ना उमका विप रण म परिणति न्ही मानता । इस प्रकार दाता म विषय अन न्ही रहता । मुख्य क विषय म भा कृष्ण ऐसी हा बाव ह । जन रणन क अनसार विषयज्ञ व गुण कम क उच्य ग हाता है औ मुक्त दणा म कम का उच्य न्हा रन्ता । रण वारण उम सुर का भा अन ही जाता है । हा, जा मुख्य आ मा का स्वाभाविक गुण है उसकी सत्ता वहा रहता ३ ।

जन रण म जा स्थान वार्माण गरीर का है व । वायरणन म धम और अधम का है । वार्माण गरीर का जय ३ मखिन कम परमाणु । व दो प्रकार क हात हैं । अकूल पण दन वाण और प्रतिकूल पण दन वाण । इहा का वाय दणन म क्रमण धम और अधम क्ता गया ३ । दाता को अदृष्ट कहा जाता है ।

(३) कारण परार

(४) पुष्प या आमा

स्थूल शरीर का स्वरूप प्रायः सायन्मन का समान है। किन्तु एक विशेषता है जिसका दार्शनिक दृष्टि से बहुत महत्त्व है। साय दान पथी जल, अग्नि वायु तथा आकाश के रूप में पांचो भूतों का पथक एक स्वरूप अस्तित्व मानता है। इनमें प्रथम चार सायमत्र है अर्थात् उनमें परमाणु होता है जो रस मितकर स्थूल शरीर का निर्माण करता है। आकाश निरवयव है। उसके परमाणु नहीं होते। पांचो भूत अपना अपना स्वतंत्र अस्तित्व रखते हैं। उनका परस्पर सघन होने पर भी सम्मिश्रण नहीं होता। अर्थात् पथी के परमाणु सभी जल के रूप में परिणत नहीं होते। गुणा का दृष्टि से भी उनमें तारतम्य है। पथी में रूप रस गन्ध तथा स्पृश चारों भौतिक गुण रहते हैं। जल में गन्ध नहीं होता। अग्नि में रस नहीं होता और वायु में रूप नहीं होता। आकाश में ये चारों नहीं होते।

सायन्मन महाभूतों का अस्तित्व स्वीकार करता है। किन्तु उन्हें सायन्मन नहीं मानता। वे सब प्रकृति नामक एक ही तत्त्व के विकार हैं। परमाणु जो उनमें आधार पर होने वाला भूत भी उस स्वीकार नहीं है। उनमें स्वानु पर बहुत पाँच तन्मात्राएँ मानती है। अज्ञानका अर्थ * पांच महाभूतों के शुद्ध अथवा मूलगुण। वे ही अर्थ गुणों के साथ सम्मिश्रण होने पर महाभूतों का रूप लभते हैं। उनमें अणु के रूप में पथी का मूल गन्ध तन्मात्रा है।

जल का रस तामात्रा अग्नि का रूप तामात्रा वायु का स्पर्श तामात्रा और आकाश का गन्ध तामात्रा। प्रत्येक महाभूत में प्राधान्य भाव निश्चय तामात्रा ही होता है और अन्य अत्र तामात्राभावात्। इन प्रकार प्रत्येक महाभूत में गमा गूण रहते हैं।

जैन गणना में भूतों का चारवर्णिक भेद को आध्यात्मिक नहीं मानता। चारवर्णिक में जो स्थान प्रकृति का है वह यज्ञ पुद्गल का है। किन्तु जैन गणना में परमाणुरूप मानता है। मान्य ही यह भी कहता है कि प्रत्येक परमाणु में रूप रस गंध और स्पर्श चारों गुण होते हैं। चारवर्णिक गणना का गुण मानता है। मान्य गणना में तामात्रा ही रूप में स्वीकार करता है। किन्तु जैन गणना का कथन है कि कुछ पुद्गल परमाणु ही भावात् या सात् के रूप में परिणत होते हैं। आकाश ही वह स्थान में एक ही ही वस्तु द्रव्य मानता है। उसके साथ सात् ही ही तत्र स्थित स्वीकार नहीं करता है।

उपर जो चारवर्णिक गणना किया जा चुका है। वह गणना पुद्गल का विभिन्न अर्थव्यापक है। जो गुण परमाणु औपचारिक परीक्षा के रूप में परिणत होते हैं। उक्त औपचारिक परीक्षा का अर्थ है। और जो व्यक्तिगत परीक्षा के रूप में परिणत होते हैं। उक्त व्यक्तिगत परीक्षा। तथा प्रकार चारवर्णिक गणना का विषय है। किन्तु यह भी आत्यन्तिक नहीं है। भी व्यक्तिगत परीक्षा का परमाणु समय वाक्य अक्षर वगैरह वगैरह में परिणत हो सकते हैं। और व्यक्तिगत परीक्षा के औपचारिक वगैरह में। तथा प्रकार गणना है कि

जनद्वयन एक तार साक्ष्य व प्रकृतिराज की ओर झुका हुआ है दूसरी ओर परमाणुशा का अस्तित्व भी स्वीकार करना है ।

साध्यजन धारम्भवाणी है । यहा परमाणु नित्य और परि वस्तुन गीत मान गण है । व ही विभिन्न आकारो और अनुपाता म एतवित हावर विभिन्न वस्तुआ का निर्माण करत है । वस्तुआ म परिवर्तन परमाणुआ व परिवर्तन व कारण हाता है । और यह परिवर्तन गुणा वा न होकर द्रव्या का हाता है । जब सफेद वपण काला रंग लिया जाता है, तो सफेद परमाणुआ का स्थान काठ परमाणु ल लत है ।

साध्यजन परिणामवाणी है । वहा अत्येक अवयवा अपन आप म र्काई है । गुणा म परिवर्तन नान पर भा वस्तु नहीं ब लती । जनद्वयन परमाणुआ का अस्तित्व स्वीकार करने पर भा रिणामवादा है । यह मानता है कि प्रत्येक वस्तु म रूप रम ग व भाति का परिवर्तन हाता रणा है । उसक लिए परमाणुआ म परिवर्तन का बाध यकता न । है ।

साध्य जीव साध्य सात्मा वा व्यापक मानने हैं । फिर भा यह भाव यक नहीं समझत कि प्रत्येक जन्म का सत्रध किसी वस्तु व साध्य अवयव न । अतः पिपरीन जन द्वयन यह मानता है कि प्रत्येक जड वभा न कभी धनन वा धरीर रहा है । पृथ्वी पृथ्वी वायु व आबो वा धरार है । जल मन्वाय व जीवा वा । अग्नि सत्रम वायु व जीवा वा और वायु वायुकाय व जीवा वा ।

साध्यजन म दूसरा स्थान सू म गरीर वा है । इनके सत्रह अवयव हैं—

पाच ज्ञानेन्द्रिया पाच कर्मेन्द्रिया पाच तन्मात्राण मन और अकार । ज्ञानेन्द्रिया में मस्तिष्क गुण की प्रधानता जाती है । कर्मेन्द्रिया म रजोगुण की और तन्मात्राण म तमोगुण की ।

व्यक्तित्व का तीसरा घटक कारण गरीर है । साक्ष्यज्ञान में इसे मन्त्र या बुद्धि कहा जाता है । इसका अर्थ है जड़ और चेतन का प्रथम सम्बन्ध । एतन्म चेतन की युद्ध अवस्था समाप्त हो जाता है और उस पर अचेतन का प्रभाव पड़ने लगता है । जनज्ञान में एतन्मी की कार्माण गरीर बना गया है । वह अच्छे और बुरे समस्त मस्कारों का पुत्र है । जो समय समय पर उत्पन्न होकर फल देने लगते हैं ।

व्यक्तित्व का चौथा घटक आत्मा है । साक्ष्यज्ञान बुद्धि सुख दुःख आदि को इसकी विषयताओं के रूप में स्वीकार करता है । किन्तु ये विषयताएँ आगन्तुक हैं । स्वाभाविक नहीं हैं । भाग्य में उनका अस्तित्व नहीं रहना । साक्ष्य ज्ञान पुरुष को चिन्स्वरूप मानता है । किन्तु इसका मतलब होता है कि उसका बुद्धि के साथ सम्पर्क होता है । जानना या अनुभव करना बुद्धि का काम है । और उसका सम्बन्ध प्रकृति के साथ है । जन ज्ञान ज्ञान के दो भेद करता है—साकार और निराकार । दोनों आत्मा के स्वाभाविक गुण हैं । जसकी यह मायना है कि आत्मा अपने आप में अनन्तान एव अनन्त ज्ञान रूप है । जान का अर्थ है साकार प्रतिभास और ज्ञान का अर्थ है निराकार प्रतिभास ।

यन्म एव प्रश्न है । पान व भेष म मतिमान और श्रमपान के रूप म द्वयमापन जाभासा का भा उल्लय है । इसी प्रकार एग व भेष म चक्षुस्पर्श का उल्लेख है । इह आत्मा का स्वाभाविक परिणति न, का क्या नामकता । उन दान का उत्तर है वाता और एगना मवय का मा का राय है । कम पुद्गल उसकी इस गरिभ का कुण्ठित पर त्त है । इदिया उग आवरण का आटा रद क त्रिण दृष्टा दती हैं । व मित्तकी के ममान हैं । त्रिमका जव है — आवरण का आगिक रूप म हुत्ता । दसाने का काम आत्मा की करती है ।

उपाध्याय यगोविजय ने इन प्रश्न का समाधान वेदान्त का रूप म रूप कर दिया है । वेदान्त म अविद्या की का मविषया माना गई है । आवरण गरिभ और विक्षय गरिभ । आवरण शक्ति गुण चेतता का चेतता है और विषय गरिभ घट पट आदि वस्तुओं के रूप म ज्ञात उत्पन्न करता है । यगोविजय अविद्या व रवान पर केवल पाभावरण का रूपने है और उतर ही वाय मानत है । एव और व आत्मा के गुण स्वस्व का आच्छन्न कित रता है । इसका आर बाह्य वस्तुओं का नाम उत्पन्न करता है । हम यहाँ उम यथा मन जाकर इतना ही कन्ता चाहते हैं कि इस धर्म म जन दान मान्य एगने के भि न हा गया है । ज्ञान ही नहीं वर सुख और गरिभ का मा आत्मा व स्वामाविक गुण मानता है । एग दृष्टि म बह रता न व त्रिम परत पाता है जहा सत् चित और धान्त्त प्रद्वान् शक्ति, पान सुग का आत्मा का



